

प्रश्न 1: बहुराष्ट्रीय कंपनी (MNC) की व्याख्या कीजिए।

1. प्रस्तावना एवं अकादमिक परिभाषा: बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporation - MNC) अथवा पारराष्ट्रीय निगम (Transnational Corporation) उस आधुनिक औद्योगिक उद्यम को कहा जाता है जिसका कॉर्पोरेट मुख्यालय किसी एक राष्ट्र (गृह देश / Home Country) में पंजीकृत होता है, परंतु उसकी उत्पादन, वितरण, विपणन एवं व्यावसायिक सहायक इकाइयाँ एक से अधिक अन्य देशों (मेजबान देश / Host Countries) में प्रत्यक्ष रूप से सक्रिय रहती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ (UN) के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार एवं विकास सम्मेलन (UNCTAD) के अनुसार, "बहुराष्ट्रीय कंपनी वह निगमित निकाय है जो दो या दो से अधिक देशों में उत्पादन संपत्तियों पर स्वामित्व अथवा प्रभावी प्रबंधकीय नियंत्रण रखती है।"

2. बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रमुख संरचनात्मक लक्षण:

- विशालकाय वित्तीय आधार एवं तरलता:** इन निगमों की कुल वार्षिक संपत्ति और कारोबार अक्सर कई छोटे विकासशील देशों के सकल घरेलू उत्पाद (GDP) से भी अधिक होता है।
- उन्नत अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी (R&D):** एमएनसी अपने शुद्ध लाभ का एक बड़ा हिस्सा अनुसंधान पर खर्च करती हैं, जिससे उनके पास पेटेंट, कॉपीराइट और वैश्विक स्तर पर अत्याधुनिक विनिर्माण प्रणालियाँ होती हैं।
- केंद्रीकृत नियंत्रण और रणनीतिक निर्णय:** मुख्य वित्तीय नीतियाँ, तकनीकी वितरण और नेतृत्व संबंधी निर्णय मूल देश के मुख्यालय द्वारा नियंत्रित होते हैं, जबकि दिन-प्रतिदिन के वाणिज्यिक निर्णय स्थानीय शाखाओं द्वारा लिए जाते हैं।
- वैश्विक स्तर पर विपणन एवं ब्रांडिंग:** ये फर्म दुनिया भर में उपभोक्ताओं को आकर्षित करने हेतु आक्रामक विज्ञापन रणनीतियों और वैश्विक ब्रांड छवि का निर्माण करती हैं।

3. विकासशील अर्थव्यवस्थाओं (मेजबान देशों) पर प्रभाव:

(क) सकारात्मक प्रभाव: विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (FDI) का विशाल प्रवाह, घरेलू श्रम बल को तकनीकी व प्रबंधकीय प्रशिक्षण, स्थानीय सहायक उद्योगों (Ancillary Units) का विकास, तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में स्थानीय उत्पादों का निर्यात विस्तार।

(ख) नकारात्मक प्रभाव: लाभ का बड़े पैमाने पर गृह देश में प्रत्यावर्तन (Profit Repatriation), स्थानीय लघु एवं पारंपरिक उद्योगों का दमन, पूँजी-गहन (Capital-intensive) तकनीकों के प्रयोग से रोजगार सृजन की दर का सीमित होना, तथा घरेलू आर्थिक नीतियों पर अनुचित राजनीतिक व कॉर्पोरेट दबाव।

4. निष्कर्ष: निष्कर्षतः, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भूमंडलीकृत अर्थव्यवस्था में ज्ञान, पूँजी और प्रौद्योगिकी के तीव्र प्रसार का सशक्त माध्यम हैं। यदि मेजबान देश एक सुदृढ़ और निष्पक्ष विनियामक ढांचा (Regulatory Framework) बनाए रखे, तो इनके निवेश का उपयोग तीव्र आर्थिक संवृद्धि के लिए सर्वोत्तम ढंग से किया जा सकता है।

प्रश्न 2: I.D.B.I बैंक और I.F.C.I बैंक के उद्देश्य बताइए।

1. पृष्ठभूमि: 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत में दीर्घकालीन औद्योगिक साख (Long-term Industrial Credit) प्रदान करने वाला कोई संगठित पूंजी बाजार या बैंक तंत्र उपस्थित नहीं था। देश में भारी व बुनियादी उद्योगों की आधारशिला रखने तथा निजी उद्यमियों को दीर्घावधि पूंजी सुलभ कराने के उद्देश्य से विशेषीकृत विकास वित्तीय संस्थानों (Development Financial Institutions - DFIs) की स्थापना की गई।

2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) के उद्देश्य एवं अधिदेश:

1 जुलाई 1948 को संसद के एक विशेष अधिनियम के तहत स्थापित IFCI स्वतंत्र भारत का प्रथम विकास बैंक था। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित थे:

- **दीर्घकालीन व मध्यमकालीन ऋण सुविधा:** देश के बड़े और मध्यम पैमाने के उद्योगों को नए कारखानों की स्थापना, विस्तार तथा आधुनिकीकरण हेतु 25 वर्ष तक की दीर्घावधि के लिए ऋण उपलब्ध कराना।
- **अभिगोपन (Underwriting):** औद्योगिक उपक्रमों द्वारा सार्वजनिक बाजार में जारी किए जाने वाले अंशों (Shares), ऋणपत्रों (Debentures) और बॉन्ड्स का अभिगोपन करना ताकि सार्वजनिक निर्गम विफल न हों।
- **ऋण गारंटी एवं विदेशी मुद्रा ऋण:** अनुसूचित बैंकों या खुले बाजार से औद्योगिक फर्मों द्वारा लिए जाने वाले ऋणों की गारंटी देना तथा विदेशी मशीनरी आयात के लिए विदेशी मुद्रा साख की व्यवस्था करना।
- **रुण इकाइयों का उद्धार:** आर्थिक रूप से अस्थायी संकट में फंसे उद्योगों को तकनीकी सलाह, प्रबंधकीय मार्गदर्शन और पुनर्संरचनात्मक ऋण देना।

3. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) के उद्देश्य:

जुलाई 1964 में भारतीय रिजर्व बैंक की एक पूर्ण स्वामित्व वाली संस्था के रूप में IDBI की स्थापना हुई (1976 में इसे एक स्वायत्त सार्वजनिक निगम का दर्जा मिला)। इसके प्रमुख उद्देश्य थे:

- **शीर्ष समन्वयक संस्था (Apex Institution):** देश में कार्यरत समस्त औद्योगिक वित्तीय संस्थाओं (IFCI, ICICI, SFCs, SIDCs) की नीतियों, कार्यक्रमों और गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना।
- **पुनर्वित्तपोषण (Refinancing):** वाणिज्यिक बैंकों और राज्य वित्त निगमों द्वारा औद्योगिक इकाइयों को दिए गए सावधि ऋणों पर पुनर्वित्त सुविधा देना।
- **प्रत्यक्ष परियोजना वित्त:** राष्ट्रीय प्राथमिकता वाले कोर क्षेत्रों (उर्वरक, सीमेंट, लोहा-इस्पात, पेट्रोकेमिकल) को भारी प्रत्यक्ष ऋण व इक्विटी सहायता प्रदान करना।
- **संतुलित क्षेत्रीय विकास:** पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित होने वाले नए उद्योगों को ब्याज अनुदान और रियायती दरों पर पूंजी सुलभ कराना।
- **उद्यमिता एवं संस्थागत निर्माण:** नए उद्यमियों को तकनीकी परामर्श प्रदान करना तथा SIDBI, CRISIL और EXIM Bank जैसी संस्थाओं की नींव रखना।

निष्कर्ष: 1991 के बाद वित्तीय क्षेत्र सुधारों के तहत यद्यपि IDBI 2004 में एक पूर्ण वाणिज्यिक बैंक में रूपांतरित हो गया, तथापि भारत के प्रारंभिक औद्योगिकीकरण का ढांचा खड़ा करने में इन दोनों संस्थाओं का योगदान ऐतिहासिक और अविस्मरणीय है।

प्रश्न 3: औद्योगिक बीमारी (Industrial Sickness) की व्याख्या कीजिए।

1. अर्थ एवं वैधानिक संकल्पना: औद्योगिक बीमारी अथवा औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness) से तात्पर्य किसी औद्योगिक इकाई की उस असंतोषजनक, अस्वस्थ और संकटग्रस्त वित्तीय स्थिति से है जिसमें वह लगातार परिचालन हानियों (Operating Losses) का सामना करती है और अपने दैनिक वित्तीय व विधिक दायित्वों (मजदूरी, कच्चे माल का भुगतान, ऋण का मूलधन व ब्याज) को चुकाने में असमर्थ हो जाती है। पूर्ववर्ती 'रुग्ण औद्योगिक कंपनी (विशेष उपबंध) अधिनियम, 1985' (SICA) की धारा 3(1)(o) के अनुसार, "एक रुग्ण औद्योगिक कंपनी वह है जो कम से कम पाँच वर्ष पुरानी हो और किसी वित्तीय वर्ष के अंत में उसकी संचित हानि (Accumulated Losses) उसकी कुल निवल परिसंपत्ति (Net Worth) के बराबर या उससे अधिक हो चुकी हो।" वर्तमान समय में 'दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, 2016' (IBC) के तहत इसे ऋण शोधन में विफलता (Default) के आधार पर परिभाषित किया जाता है।

2. औद्योगिक रुग्णता के प्रमुख लक्षण (Early Warning Signals):

- **लगातार परिचालन घाटा:** बिक्री से प्राप्त कुल आगम (Revenue) का उत्पादन की कुल लागत से कम हो जाना।
- **कार्यशील पूँजी का गंभीर अभाव:** नकदी प्रवाह (Cash Flow) का सूख जाना तथा चालू अनुपात (Current Ratio) का 1 से नीचे गिर जाना।
- **क्षमता का न्यून उपयोग:** कारखाने के संयंत्र और मशीनरी का उसकी कुल स्थापित क्षमता के केवल 30-40% पर चलना।
- **इन्वेंटरी का जमावड़ा:** उत्पादित माल की बाजार में मांग न होने से गोदामों में बिना बिका माल अटका रहना।
- **वैधानिक बकायों में वृद्धि:** श्रमिकों के वेतन, भविष्य निधि (PF), ईएसआई तथा करों के भुगतान में महीनों का विलंब होना।

3. रुग्णता के प्रमुख कारण:

(क) आंतरिक कारण (Internal Causes):

- **प्रबंधकीय अक्षमता व वित्तीय अनियमितता:** अक्षम नेतृत्व, व्यावसायिक अदूरदर्शिता तथा कंपनी के कोषों का अन्यत्र विचलन (Diversion of Funds)।
- **अप्रचलित तकनीक:** पुरानी और अक्षम मशीनों का उपयोग, जिससे प्रति इकाई उत्पादन लागत बढ़ती है और गुणवत्ता घटती है।
- **खराब औद्योगिक संबंध:** प्रबंधन और श्रमिकों के बीच निरंतर विवाद, तालाबंदी और बार-बार होने वाली हड़तालें।

(ख) बाहरी कारण (External Causes):

- **नीतिगत एवं विनियामक परिवर्तन:** आयात शुल्कों में अप्रत्याशित कटौती से सस्ती विदेशी वस्तुओं से अवांछित प्रतिस्पर्धा।
- **आधारभूत संरचना की विफलता:** कोयले, बिजली या ईंधन की अनपेक्षित कमी तथा परिवहन में बाधाएँ।
- **कच्चे माल का संकट:** आवश्यक इनपुट की कीमतों में अचानक भारी उछाल या आपूर्ति श्रृंखला में गतिरोध।

4. निष्कर्ष: औद्योगिक रुग्णता राष्ट्रीय संसाधनों के अपव्यय, व्यापक बेरोजगारी और बैंकिंग क्षेत्र में एनपीए (NPA) के संकट को जन्म देती है। अतः समय रहते अर्ली-वार्निंग सिस्टम और त्वरित दिवाला समाधान द्वारा इसका उपचार अनिवार्य है।

प्रश्न 4: भारतीय अर्थव्यवस्था में MSME उद्यम की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

1. प्रस्तावना एवं वर्गीकरण: सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (Micro, Small and Medium Enterprises - MSME) भारतीय अर्थव्यवस्था के गतिशील संवृद्धि चालक (Growth Engines) माने जाते हैं। 'MSMED अधिनियम, 2006' (संशोधित 2020) के अनुसार, विनिर्माण और सेवा दोनों क्षेत्रों के लिए एक समान संयुक्त मानदंड (संयंत्र-मशीनरी में निवेश तथा वार्षिक टर्नओवर) निर्धारित किया गया है:

- **सूक्ष्म उद्यम (Micro):** निवेश $\leq$ ₹1 करोड़ एवं टर्नओवर $\leq$ ₹5 करोड़
- **लघु उद्यम (Small):** निवेश $\leq$ ₹10 करोड़ एवं टर्नओवर $\leq$ ₹50 करोड़
- **मध्यम उद्यम (Medium):** निवेश $\leq$ ₹50 करोड़ एवं टर्नओवर $\leq$ ₹250 करोड़

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में MSME का बहुआयामी योगदान:

- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में विशाल भागीदारी:** MSME क्षेत्र भारत की कुल जीडीपी में लगभग 28% से 30% और कुल विनिर्माण उत्पादन में लगभग 36% का प्रत्यक्ष योगदान देता है।
- **विशाल रोजगार सृजन:** कृषि क्षेत्र के पश्चात यह देश का दूसरा सबसे बड़ा नियोजक है। यह लगभग 11 करोड़ से अधिक कामगारों को प्रत्यक्ष आजीविका उपलब्ध कराता है। यहाँ प्रति इकाई पूँजी निवेश पर रोजगार सृजन की क्षमता बड़े भारी उद्योगों की तुलना में लगभग 4 से 6 गुना अधिक है।
- **निर्यात संवर्धन एवं विदेशी मुद्रा अर्जन:** भारत के कुल वस्तुगत निर्यात में MSME क्षेत्र का हिस्सा लगभग 40% से 45% है। यह परिधान, चमड़ा उत्पाद, खेल सामग्री, इंजीनियरिंग कलपुर्जों और हस्तशिल्प का प्रमुख वैश्विक निर्यातक है।
- **संतुलित क्षेत्रीय व समावेशी विकास:** भारी उद्योगों के विपरीत, लघु इकाइयाँ देश के टियर-2, टियर-3 शहरों और ग्रामीण अंचलों में भी स्थानीय संसाधनों के आधार पर स्थापित की जा सकती हैं। इससे ग्रामीण-शहरी आय विषमता घटती है और महानगरों की ओर होने वाले अनियंत्रित श्रम पलायन पर अंकुश लगता है।
- **उद्यमिता, नवाचार और बड़े उद्योगों के पूरक:** यह क्षेत्र समाज के वंचित वर्गों, महिलाओं और ग्रामीण युवाओं को स्व-रोजगार का अवसर देता है। साथ ही, यह बड़ी ऑटोमोबाइल और रक्षा कंपनियों के लिए आवश्यक स्पेयर पार्ट्स और मध्यवर्ती वस्तुएं (Intermediates) उपलब्ध कराता है।

3. प्रमुख चुनौतियाँ एवं सरकारी पहल:

संस्थागत ऋण की कमी, बड़े खरीदारों द्वारा विलंबित भुगतान (Delayed Payments), तथा तकनीकी पिछड़ापन इस क्षेत्र की मुख्य बाधाएँ हैं। इनके समाधान हेतु सरकार ने पीएम स्वनिधि, मुद्रा योजना, आपातकालीन क्रेडिट लाइन गारंटी योजना (ECLGS) तथा 'उद्यम रजिस्ट्रेशन पोर्टल' जैसी महत्वपूर्ण पहलें लागू की हैं।

4. निष्कर्ष: भारत को 5 ट्रिलियन डॉलर की वैश्विक अर्थव्यवस्था बनाने तथा 'आत्मनिर्भर भारत' के संकल्प को साकार करने के लिए MSME क्षेत्र को वित्तीय और तकनीकी रूप से सशक्त बनाना अपरिहार्य है।

प्रश्न 5: पैमाने की बचत से आप क्या समझते हैं?

1. अर्थ एवं सैद्धांतिक आधार: औद्योगिक अर्थशास्त्र और उत्पादन सिद्धांत के अंतर्गत 'पैमाने की बचत' (Economies of Scale) से तात्पर्य उस आर्थिक लाभ से है, जिसमें उत्पादन का पैमाना (Scale of Production) बढ़ाने पर प्रति इकाई उत्पादन लागत (Long-run Average Cost - LAC) में क्रमिक गिरावट आती है। जब एक फर्म दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधनों को आनुपातिक रूप से बढ़ाती है और कुल उत्पादन में वृद्धि की दर लागत वृद्धि की दर से अधिक होती है, तब पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns to Scale) प्राप्त होते हैं।

2. पैमाने की बचतों का वर्गीकरण (अल्फ्रेड मार्शल का मॉडल):

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने पैमाने की बचतों को दो प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है:

(क) आंतरिक बचतें (Internal Economies):

ये वे बचतें हैं जो किसी एक विशिष्ट फर्म को उसके अपने आकार, आंतरिक संगठन, दक्षता और संयंत्र विस्तार के कारण प्राप्त होती हैं। ये अन्य फर्मों को स्वतः उपलब्ध नहीं होतीं:

- **तकनीकी बचतें (Technical Economies):** बड़े पैमाने पर आधुनिक, स्वचालित और उच्च क्षमता वाली मशीनों का पूर्ण उपयोग संभव होता है। इससे जटिल श्रम-विभाजन और विशिष्टीकरण लागू होता है।
- **प्रबंधकीय बचतें (Managerial Economies):** उत्पादन विस्तार के साथ फर्म विशेषज्ञ कार्यात्मक प्रबंधकों (वित्त, विपणन, मानव संसाधन, उत्पादन) की नियुक्ति कर सकती है, जिससे निर्णय प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक और दक्ष बनती है।
- **वाणिज्यिक एवं विपणन बचतें:** भारी मात्रा में कच्चा माल क्रय करने पर थोक छूट मिलती है। इसके अलावा, कुल विज्ञापन और प्रचार व्यय अधिक इकाइयों पर बंट जाने से प्रति इकाई विपणन लागत बहुत घट जाती है।
- **वित्तीय बचतें:** बड़े और सुस्थापित कॉर्पोरेट घरानों की साख (Creditworthiness) अच्छी होती है, जिससे बैंक उन्हें अपेक्षाकृत कम ब्याज दरों और आसान शर्तों पर भारी ऋण उपलब्ध कराते हैं।
- **जोखिम उठाने की बचतें:** बड़ी फर्म विभिन्न उत्पाद श्रेणियों और भौगोलिक बाजारों में विविधीकरण (Diversification) करके मांग के उतार-चढ़ाव के जोखिम को कम कर लेती हैं।

(ख) बाह्य बचतें (External Economies):

ये वे लाभ हैं जो किसी एक फर्म के प्रयासों से नहीं, बल्कि पूरे उद्योग के किसी भौगोलिक क्षेत्र में विकसित और संकेंद्रित होने के फलस्वरूप उस उद्योग की समस्त फर्मों को समान रूप से सुलभ होते हैं:

- **केंद्रीकरण की बचतें:** औद्योगिक क्लस्टर बनने से कुशल श्रमिकों का एक बड़ा पूल, विकसित परिवहन, विश्वसनीय विद्युत ग्रिड और विशेष मरम्मत सेवाएं स्वतः उपलब्ध हो जाती हैं।
- **सूचना एवं अनुसंधान की बचतें:** उद्योग के सभी उत्पादकों को तकनीकी शोध पत्रिकाओं, व्यापारिक सूचनाओं और बाजार अनुसंधानों का साझा लाभ न्यूनतम लागत पर मिलता है।
- **विखंडन की बचतें (Economies of Disintegration):** मुख्य उद्योग की सहायता हेतु छोटे-छोटे सहायक उद्योगों का विकास होना।

3. पैमाने की हानियाँ (Diseconomies of Scale):

यदि कोई फर्म अपने इष्टतम आकार (Optimum Size) से आगे अत्यधिक विस्तार करती है, तो प्रबंधन में शिथिलता, समन्वय की समस्याएं, लालफीताशाही और श्रमिकों में अलगाव के कारण प्रति इकाई लागत बढ़ने लगती है, जिसे पैमाने की हानियाँ कहा जाता है।

प्रश्न 6: औद्योगिकीकरण से आप क्या समझते हैं?

1. अवधारणा एवं विस्तृत अभिप्राय: औद्योगिकीकरण (Industrialization) केवल कारखानों की संख्या बढ़ाने की एक यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक युगांतरकारी सामाजिक-आर्थिक और तकनीकी रूपांतरण है। इसके अंतर्गत किसी देश की समग्र उत्पादन प्रणाली पारंपरिक हस्तशिल्प, शारीरिक श्रम और प्राथमिक कृषि व्यवस्था से रूपांतरित होकर आधुनिक शक्ति-चालित मशीनरी, कारखाना प्रणाली (Factory System) और संगठित विनिर्माण में बदल जाती है। आर्थिक शब्दावली में, औद्योगिकीकरण का अर्थ राष्ट्रीय आय और कुल कार्यबल नियोजन में द्वितीयक क्षेत्र (विनिर्माण, निर्माण, ऊर्जा और खनन) के सापेक्षिक अंश में सतत और संरचनात्मक वृद्धि होना है।

2. औद्योगिकीकरण की मूलभूत विशेषताएँ:

- **यांत्रिक और निर्जीव ऊर्जा का प्रयोग:** उत्पादन में शारीरिक और पशु शक्ति का स्थान वाष्प, विद्युत, पेट्रोलियम, परमाणु और नवीकरणीय ऊर्जा द्वारा लिया जाता है।
- **कारखाना प्रणाली एवं वैज्ञानिक प्रबंधन:** उत्पादन विकेंद्रीकृत पारिवारिक घरों से निकलकर केंद्रीकृत कारखानों में स्थापित होता है, जहाँ कठोर श्रम-विभाजन, समय-प्रबंधन और गुणवत्ता नियंत्रण लागू होता है।
- **पूँजी संचय की उच्च दर:** राष्ट्रीय बचत और विदेशी निवेश का एक बड़ा हिस्सा पूंजीगत संपत्तियों (संयंत्र, भारी मशीनरी, रेलवे, हाईवे, बंदरगाह) के निर्माण में पुनर्निवेशित किया जाता है।
- **तीव्र शहरीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन:** कारखानों के इर्द-गिर्द नए औद्योगिक शहरों का उदय होता है, जिससे पारंपरिक सामाजिक बंधनों में ढील आती है और एक नए औद्योगिक श्रमिक वर्ग व मध्यवर्ग का प्रादुर्भाव होता है।

3. आर्थिक विकास में औद्योगिकीकरण की केंद्रीय भूमिका:

- **प्रति व्यक्ति आय और जीवन स्तर में तीव्र उछाल:** उद्योग क्षेत्र में उत्पादकता की दर कृषि की तुलना में बहुत अधिक होती है। इससे कम समय में अधिक मूल्यवर्धन संभव होता है, जिससे राष्ट्रीय आय तेजी से बढ़ती है।
- **कृषि पर से जनसंख्या का दबाव कम करना:** भारत जैसे विकासशील देशों में कृषि में व्याप्त प्रच्छन्न बेरोजगारी (Disguised Unemployment) को उद्योग अपने भीतर समाहित कर उत्पादक रोजगार में बदल देते हैं।
- **कृषि का तकनीकी संवर्धन:** उद्योग कृषि को रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, ट्रैक्टर, कंबाइन हार्वेस्टर और ट्यूबवेल प्रदान करता है, जिससे कृषि उत्पादकता कई गुना बढ़ जाती है।
- **भुगतान संतुलन और राष्ट्रीय संप्रभुता:** घरेलू विनिर्माण से आयातों पर निर्भरता घटती है, विदेशी मुद्रा की बचत होती है और राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु आधुनिक रक्षा उपकरणों का निर्माण संभव होता है।

4. निष्कर्ष: औद्योगिकीकरण किसी भी पिछड़े राष्ट्र के लिए आधुनिक आर्थिक विकास की पूर्व-शर्त है। 21वीं सदी में औद्योगिकीकरण का स्वरूप बदलकर 'स्मार्ट, डिजिटल और हरित औद्योगिकीकरण' (Industry 4.0) हो चुका है, जहाँ पर्यावरणीय संतुलन और समावेशिता सर्वोपरि हैं।

प्रश्न 7: औद्योगिकीकरण में पर्यावरणीय संरक्षण संबंधी मुद्दे कौन-कौन से हैं?

1. परिचय एवं अंतर्संबंध: औद्योगिकीकरण आधुनिक सभ्यता की भौतिक समृद्धि का मुख्य आधार रहा है, परंतु इसके अनियंत्रित और अंधाधुंध विस्तार ने वैश्विक पारिस्थितिकी संतुलन (Ecological Balance) को गंभीर क्षति पहुँचाई है। प्राकृतिक संसाधनों का अति-दोहन और भारी मात्रा में औद्योगिक अपशिष्टों का विसर्जन पर्यावरण संरक्षण के सम्मुख गंभीर चुनौतियाँ खड़ी कर रहा है। आज आर्थिक संवृद्धि और पर्यावरणीय वहनीयता (Environmental Sustainability) के बीच संतुलन साधना औद्योगिक अर्थशास्त्र का केंद्रीय विषय है।

2. औद्योगिकीकरण से जुड़े प्रमुख पर्यावरणीय मुद्दे:

- **वायु प्रदूषण एवं ग्लोबल वार्मिंग (Air Pollution & Climate Change):** थर्मल पावर प्लांट, सीमेंट, रासायनिक और इस्पात संयंत्रों में भारी मात्रा में जीवाश्म ईंधन (कोयला, पेट्रोलियम) के दहन से सल्फर डाइऑक्साइड (SO_2), नाइट्रोजन ऑक्साइड्स (NO_x), कार्बन मोनोऑक्साइड और महीन कण ($\text{PM}_{2.5}$, PM_{10}) उत्सर्जित होते हैं। ग्रीनहाउस गैसों (विशेषकर CO_2) की सघनता बढ़ने से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है और जलवायु परिवर्तन की विभीषिका उत्पन्न हो रही है।
- **जल प्रदूषण एवं औद्योगिक बहिःसाव (Water Pollution):** वस्त्र रंगाई, चमड़ा उद्योग, पेपर पल्प और रासायनिक कारखानों से निकलने वाला अनुपचारित विषाक्त कचरा (जिसमें सीसा, पारा, आर्सेनिक और कैडमियम जैसी भारी धातुएं होती हैं) सीधे नदियों, झीलों और भूजल स्रोतों में बहा दिया जाता है। इससे पेयजल स्रोत नष्ट हो रहे हैं और जलीय जीवन का विनाश हो रहा है।
- **प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध क्षरण (Resource Depletion):** कच्चे माल और ऊर्जा की अंतहीन भूख के कारण खनिजों का अनियंत्रित खनन, वनों की बड़े पैमाने पर कटाई और भूमिगत जल का अत्यधिक दोहन हो रहा है, जो अंतर-पीढ़ीगत समानता (Inter-generational Equity) के सिद्धांत का खुला उल्लंघन है।
- **खतरनाक ठोस अपशिष्ट एवं ई-कचरा:** प्लास्टिक, रासायनिक स्लज, फ्लाई ऐश तथा इलेक्ट्रॉनिक कचरे का सुरक्षित पुनर्चक्रण न होने से उपजाऊ कृषि भूमि बंजर हो रही है और मिट्टी की रासायनिक संरचना विषाक्त हो रही है।
- **ध्वनि एवं तापीय प्रदूषण:** भारी टर्बाइनों, जनरेटरों और धातु ढलाई इकाइयों से निकलने वाले तीव्र शोर और गर्म पानी के विसर्जन से स्थानीय जैव विविधता पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

3. नीतिगत उपाय एवं संरक्षण रणनीतियाँ:

- **प्रदूषक भुगतान कर सिद्धांत (Polluter Pays Principle):** प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों पर भारी पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति सेस लगाना।
- **पर्यावरण प्रभाव आकलन (EIA) का कड़ाई से अनुपालन:** किसी भी नए प्रोजेक्ट को मंजूरी देने से पूर्व पारिस्थितिकी पर उसके प्रभावों का वैज्ञानिक विश्लेषण।
- **चक्रीय अर्थव्यवस्था (Circular Economy):** 3R (Reduce, Reuse, Recycle) और शून्य तरल निर्वहन (Zero Liquid Discharge - ZLD) को विनिर्माण प्रक्रियाओं का अनिवार्य अंग बनाना।
- **हरित ऊर्जा संक्रमण:** कोयले के स्थान पर सौर, पवन, बायोमास और हरित हाइड्रोजन का उपयोग।

4. निष्कर्ष: सतत विकास (Sustainable Development) का लक्ष्य तभी प्राप्त किया जा सकता है जब आर्थिक नीतियां प्रकृति के नियमों के अनुकूल हों। औद्योगिकीकरण ऐसा होना चाहिए जो जीवन की गुणवत्ता बढ़ाए, न कि जीवन के आधार को ही समाप्त कर दे।

प्रश्न 8: विलयन (Merger) से आप क्या समझते हैं?

1. अवधारणा एवं परिभाषा: औद्योगिक अर्थशास्त्र और कॉर्पोरेट वित्त के अंतर्गत 'विलयन' (Merger) वह रणनीतिक, संविदात्मक और कानूनी प्रक्रिया है जिसमें दो या दो से अधिक पूर्ववर्ती स्वतंत्र व्यावसायिक फर्म आपसी सहमति से मिलकर एक एकीकृत, एकल व्यावसायिक पहचान का निर्माण करती हैं। सामान्यतः यह प्रक्रिया दोनों कंपनियों के निदेशक मंडलों की सहमति, शेयरधारकों के अनुमोदन और राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा प्राधिकरण (जैसे भारत में CCI) की स्वीकृति से पूरी होती है।

संरचनात्मक सूत्र: यदि फर्म 'A' और फर्म 'B' का विलय होता है, तो या तो वे एक पूर्णतः नई इकाई 'C' का गठन करती हैं ($A + B = C$), अथवा एक बड़ी कंपनी दूसरी छोटी कंपनी को अपने भीतर समाहित (Absorb) कर लेती है ($A + B = A$)।

2. विलयन के प्रमुख प्रकार (Types of Mergers):

- क्षैतिज विलयन (Horizontal Merger):** जब एक ही उद्योग में समान उत्पाद का निर्माण करने वाली और समान बाजार स्तर पर एक-दूसरे से प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा करने वाली दो फर्म आपस में मिलती हैं। उद्देश्य: बाजार हिस्सेदारी बढ़ाना, मूल्य प्रतिस्पर्धा समाप्त करना और पैमाने की बचतें हासिल करना। (उदा. दूरसंचार क्षेत्र में वोडाफोन और आइडिया का विलय होकर 'Vi' बनना)।
- ऊर्ध्वाधर विलयन (Vertical Merger):** जब एक ही उत्पादन-आपूर्ति श्रृंखला (Supply Chain) के विभिन्न चरणों में कार्यरत फर्म आपस में संयोजित होती हैं। यह दो प्रकार का होता है: (i) *फॉरवर्ड मर्जर*: कच्चा माल उत्पादक द्वारा वितरण या खुदरा कंपनी का अधिग्रहण, (ii) *बैकवर्ड मर्जर*: विनिर्माता द्वारा कच्चे माल के आपूर्तिकर्ता का विलय। उद्देश्य: इनपुट आपूर्ति को सुरक्षित करना और मध्यवर्ती लेनदेन लागत (Transaction Costs) को खत्म करना।
- संकेंद्रित / सजातीय विलयन (Congeneric / Market Extension Merger):** जब संबंधित परंतु गैर-प्रतिस्पर्धी उत्पादों से जुड़ी कंपनियाँ मिलती हैं, जिनका विपणन नेटवर्क, ग्राहक आधार या तकनीकी ज्ञान एक जैसा होता है (उदा. कमर्शियल बैंक और म्यूचुअल फंड कंपनी का विलय)।
- मिश्रित / समूहीकृत विलयन (Conglomerate Merger):** जब पूर्णतः भिन्न और असंबंधित व्यावसायिक क्षेत्रों में काम करने वाली कंपनियाँ आपस में मिलती हैं (उदा. एक कपड़ा विनिर्माता का होटल श्रृंखला या सीमेंट कंपनी के साथ विलय)। इसका प्राथमिक उद्देश्य व्यावसायिक चक्रों के जोखिम का विविधीकरण (Risk Diversification) करना होता है।

3. विलयन के मुख्य आर्थिक प्रेरक (Motives):

- सिनर्जी प्रभाव (Synergy Effect - $\$2 + 2 = \$5$):** संयुक्त इकाई का कुल परिचालन मूल्य और लाभ दोनों कंपनियों के अलग-अलग मूल्यों के योग से अधिक होता है।
 - लागत में कमी:** प्रशासन, आईटी इंफ्रास्ट्रक्चर, लेखा और विपणन जैसे साझा विभागों के एकीकरण से दोहरी लागत समाप्त हो जाती है।
 - वित्तीय लाभ एवं कर बचत:** संचित हानियों वाली कंपनी के विलय से कर देनदारियों में कानूनी बचत प्राप्त होती है।
 - बाजार प्रभुत्व एवं R&D क्षमता:** संयुक्त बौद्धिक संपदा और भारी वित्तीय ताकत से नई तकनीकी प्रतिस्पर्धा का मुकाबला करना सरल हो जाता है।
- 4. सीमाएँ एवं विनियामक नियंत्रण:** अत्यधिक विलयनों से बाजार में एकाधिकार (Monopoly) स्थापित होने और उपभोक्ता शोषण का खतरा रहता है। इसी कारण 'भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग' (CCI) यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी विलय बाजार में निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा को समाप्त न करे।

प्रश्न 9: भारत में लोहा एवं इस्पात उद्योग की वर्तमान दशा का उल्लेख कीजिए।

1. ऐतिहासिक आधार एवं सामरिक महत्व: लोहा एवं इस्पात उद्योग किसी भी आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र के आर्थिक ढांचे का प्राथमिक मेरुदंड माना जाता है। इसे 'उद्योगों की जननी' कहा जाता है क्योंकि यह रेल, रक्षा, भवन निर्माण, पोत निर्माण, ऑटोमोबाइल और भारी इंजीनियरिंग मशीनरी के उत्पादन के लिए बुनियादी कच्चा माल सुलभ कराता है। भारत में आधुनिक इस्पात निर्माण का विधिवत शुभारंभ 1907 में जमशेदपुर में टाटा आयरन एंड स्टील कंपनी (TISCO) की स्थापना से हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) के अंतर्गत भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में सार्वजनिक क्षेत्र के एकीकृत इस्पात कारखाने स्थापित किए गए, जिससे देश में भारी पूंजीगत आधार की नींव पड़ी।

2. वर्तमान परिदृश्य, उत्पादन एवं वैश्विक स्थिति:

- वैश्विक स्तर पर द्वितीय स्थान:** भारत आज चीन के पश्चात विश्व का दूसरा सबसे बड़ा कच्चा इस्पात (Crude Steel) उत्पादक देश है। भारत का वार्षिक कच्चा इस्पात उत्पादन 140 मिलियन टन के स्तर को पार कर चुका है, जो घरेलू मांग के निरंतर विस्तार को प्रदर्शित करता है।
- निजी क्षेत्र का वर्चस्व:** 1991 के उदारीकरण के पश्चात क्षेत्रवार संतुलन में बड़ा परिवर्तन आया है। वर्तमान में स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (SAIL) और राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड (RINL) जैसे सार्वजनिक उपक्रमों के साथ-साथ टाटा स्टील, जेएसडब्ल्यू स्टील (JSW Steel), जिंदल स्टील एंड पावर लिमिटेड (JSPL) तथा आर्सेलरमिच्छल निप्पोन स्टील जैसे निजी उत्पादक कुल उत्पादन में 80% से अधिक का योगदान कर रहे हैं।
- प्रति व्यक्ति इस्पात खपत:** वर्तमान में भारत में तैयार इस्पात की प्रति व्यक्ति खपत लगभग 85 से 90 किलोग्राम के आसपास है। यद्यपि यह वैश्विक औसत (लगभग 230 किग्रा) से अभी कम है, किंतु यह तथ्य भारतीय बाजार में अधोसंरचना विस्तार के साथ इस्पात मांग में असीम विकास संभावनाओं को प्रकट करता है।
- राष्ट्रीय इस्पात नीति (NSP) 2017 का विजन:** इस नीति का लक्ष्य वर्ष 2030-31 तक 300 मिलियन टन की वार्षिक क्रूड स्टील क्षमता तैयार करना और प्रति व्यक्ति इस्पात खपत को 160 किलोग्राम तक ले जाना है। साथ ही उच्च मूल्य वाले 'स्पेशियलिटी स्टील' हेतु उत्पादन लिंक प्रोत्साहन (PLI) योजना लागू की गई है।

3. वर्तमान प्रमुख संरचनात्मक चुनौतियाँ:

(क) उच्च कोटि के कोकिंग कोल का अभाव: भारत लौह अयस्क में आत्मनिर्भर है, किंतु इस्पात भट्टियों (Blast Furnaces) के लिए आवश्यक निम्न-राख युक्त कोकिंग कोयले हेतु लगभग 80-85% तक ऑस्ट्रेलिया और अन्य देशों के आयात पर निर्भर है, जिससे उत्पादन लागत वैश्विक मूल्य चक्रों से प्रभावित होती है।

(ख) लॉजिस्टिक्स व रेलवे भाड़ा व्यय: भारी कच्चा माल ढोने और तैयार माल को बंदरगाहों या आंतरिक बाजारों तक भेजने में रेलवे भाड़ा और सड़क परिवहन लागत अत्यधिक बैठती है।

(ग) कार्बन उत्सर्जन एवं डीकार्बोनाइजेशन का दबाव: इस्पात निर्माण भारी कार्बन उत्सर्जक है। यूरोपीय संघ के 'कार्बन बॉर्डर एडजस्टमेंट मैकेनिज्म' (CBAM) के कारण भारतीय इस्पात निर्यातों पर अतिरिक्त कार्बन शुल्क का संकट मंडरा रहा है। अतः 'ग्रीन स्टील' और हरित हाइड्रोजन तकनीक अपनाना अत्यंत पूंजी-गहन चुनौती है।

4. निष्कर्ष: राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन (NIP), पीएम गति शक्ति और तीव्र शहरीकरण के कारण घरेलू बाजार में इस्पात की मांग दीर्घकाल तक सुदृढ़ रहेगी। यदि उद्योग स्वच्छ ऊर्जा और तकनीकी आधुनिकीकरण में निवेश तीव्र रखे, तो भारत विश्व स्तर पर न्यूनतम लागत वाला इस्पात उत्पादक बन सकता है।

प्रश्न 10: औद्योगिक श्रम पर निबंध लिखिए।

1. प्रस्तावना एवं संकल्पना: औद्योगिक श्रम (Industrial Labour) उत्पादन प्रक्रिया का एकमात्र सचेतन, संवेदनशील और सक्रिय साधन है। भूमि, पूँजी, संयंत्र और प्राकृतिक संसाधन चाहे कितने भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हों, वे तब तक निष्क्रिय रहते हैं जब तक मानवीय श्रम शक्ति का उनसे वैज्ञानिक संयोजन न किया जाए। औद्योगिक क्रांति के प्रादुर्भाव के साथ जब उत्पादन का कार्य घरेलू कुटीर प्रणाली से निकलकर बड़े कारखानों में केंद्रित हुआ, तब एक विशिष्ट सामाजिक-आर्थिक वर्ग का जन्म हुआ जिसे औद्योगिक श्रमिक वर्ग (Working Class) कहा जाता है। औद्योगिक श्रम केवल मजदूरी के बदले शारीरिक या मानसिक शक्ति का विक्रय नहीं करता, बल्कि राष्ट्र के सकल घरेलू उत्पाद और आर्थिक अधिरचना का वास्तविक निर्माता होता है।

2. भारतीय औद्योगिक श्रम की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ एवं स्वरूप:

- **प्रवासी चरित्र (Migrant Character):** भारत में औद्योगिक कार्यबल की एक बड़ी संख्या ग्रामीण क्षेत्रों से निकलकर औद्योगिक केंद्रों (जैसे सूरत, मुंबई, कानपुर, कोयम्बटूर, दिल्ली-एनसीआर) की ओर पलायन करती है। बुवाई, कटाई और त्योहारों के समय इनका गांवों की ओर लौटना कारखानों में श्रम की निरंतरता और अनुपस्थिति दर (Absenteeism) को प्रभावित करता है।
- **असंगठित व संविदा श्रम की अत्यधिक बहुलता:** देश के कुल औद्योगिक कार्यबल का लगभग 80% से 85% भाग अनौपचारिक, संविदा (Contractual), दैनिक वेतनभोगी अथवा आउटसोर्सिंग व्यवस्था के तहत कार्यरत है। इन कामगारों को नौकरी की सुरक्षा, वैधानिक सेवा लाभ और न्यूनतम मजदूरी संरक्षण बहुत कम प्राप्त होता है।
- **कौशल अंतराल (Skill Deficit):** तकनीकी परिवर्तनों (ऑटोमेशन, रोबोटिक्स, सीएनसी मशीनिंग) की तुलना में श्रमिक प्रशिक्षण का स्तर धीमा रहा है। औपचारिक तकनीकी शिक्षा और शिक्षुता (Apprenticeship) के अभाव में अधिकांश कामगार अकुशल या अर्ध-कुशल स्तर पर ही अटके रह जाते हैं, जिससे प्रति श्रमिक उत्पादकता अंतरराष्ट्रीय मानकों से कम रहती है।

3. प्रमुख समस्याएं:

(क) वास्तविक मजदूरी और जीवन-लागत असंतुलन: बढ़ती मुद्रास्फीति और आवासीय लागत के मुकाबले औद्योगिक मजदूरों की वास्तविक क्रय शक्ति सीमित बनी रहती है।

(ख) कार्यस्थल की प्रतिकूल दशाएं: छोटे व मध्यम कारखानों में रोशनी, वेंटिलेशन, जहरीले रसायनों से बचाव और दुर्घटना-रोधी सुरक्षा उपायों की भारी कमी पाई जाती है।

(ग) आवास और नागरिक सुविधाओं की न्यूनता: औद्योगिक नगरों के समीप अस्वास्थ्यकर मलिन बस्तियों (Slums) में नारकीय जीवन व्यतीत करना श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को गिरा देता है।

4. श्रम नीतियां, वैधानिक सुरक्षा एवं नवीन श्रम संहिताएं:

स्वतंत्रता पश्चात कारखाना अधिनियम 1948, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948 और ईपीएफ अधिनियम 1952 ने संगठित क्षेत्र को संरक्षण दिया। हाल के वर्षों में भारत सरकार ने जटिल 29 केंद्रीय श्रम विधियों को समाहित कर *चार नवीन श्रम संहिताओं* (वेतन संहिता, सामाजिक सुरक्षा संहिता, औद्योगिक संबंध संहिता, तथा व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्यदशा संहिता) का निर्माण किया है। साथ ही 'ई-श्रम' (e-Shram) पोर्टल के माध्यम से असंगठित कामगारों का राष्ट्रीय डेटाबेस तैयार किया गया है।

5. उपसंहार: श्रम केवल लागत का एक मद (Cost Component) नहीं है, बल्कि वह मानव पूंजी है। निष्पक्ष पारिश्रमिक, गरिमापूर्ण कार्यदशाएं और सतत कौशल विकास ही भारत को एक प्रतिस्पर्धी विनिर्माण महाशक्ति के रूप में स्थापित कर सकते हैं।

प्रश्न 11: औद्योगिक वित्त से आप क्या समझते हैं?

1. अर्थ एवं सैद्धांतिक अवधारणा: औद्योगिक वित्त (Industrial Finance) से अभिप्राय उन समस्त वित्तीय साधनों, पूँजी कोषों, साख सुविधाओं और निवेश तंत्रों से है जिनकी आवश्यकता किसी औद्योगिक उपक्रम को उसके प्रवर्तन (Promotion), संयंत्र स्थापना, दैनिक वाणिज्यिक संचालन, तकनीकी उन्नयन, आधुनिकीकरण एवं भविष्योन्मुखी विस्तार हेतु होती है। जिस प्रकार मानव शरीर में रक्त का संचार जीवन का आधार है, उसी प्रकार आधुनिक औद्योगिक प्रणाली में वित्त एक अनिवार्य प्रेरक घटक (Lifeblood) की भांति कार्य करता है। पूँजी की सुलभता, लागत और समयावधि सीधे तौर पर यह निर्धारित करती है कि उद्योग का पैमाना क्या होगा और उसकी बाजार प्रतिस्पर्धा क्षमता कितनी सुदृढ़ होगी।

2. समयावधि एवं उपयोगिता के आधार पर औद्योगिक वित्त का वर्गीकरण:

औद्योगिक प्रतिष्ठान की आवश्यकताओं के अनुरूप वित्त को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

- **दीर्घकालीन वित्त (Long-term Finance - 10 वर्ष से अधिक):**

यह वित्त स्थायी परिसंपत्तियों (स्थिर पूँजी / Fixed Capital) के निर्माण हेतु आवश्यक होता है; जैसे—कारखाने के लिए भूमि का क्रय, भवन निर्माण, भारी संयंत्र, बॉयलर, जनरेटर और विशिष्ट स्वचालित मशीनरी की स्थापना। दीर्घकालीन पूँजी का प्रतिफल लंबे समय बाद प्राप्त होता है। *प्रमुख साधन:* समता अंश (Equity Shares), पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares), ऋणपत्र (Debentures), कॉर्पोरेट बॉन्ड्स, विदेशी वाणिज्यिक उधार (ECB) तथा विकास वित्तीय संस्थानों (IDBI, IFCI) द्वारा प्रदत्त सावधि ऋण।

- **मध्यमकालीन वित्त (Medium-term Finance - 1 से 10 वर्ष):**

इस वित्त की आवश्यकता पुरानी मशीनों के आंशिक प्रतिस्थापन, संयंत्र के नवीनीकरण, छोटे पैमाने के विस्तार, प्रदूषण नियंत्रण संयंत्र लगाने या नए उत्पाद के अनुसंधान एवं विज्ञापन अभियानों के संचालन हेतु होती है। *प्रमुख साधन:* वाणिज्यिक बैंकों के मध्यकालीन सावधि ऋण, राज्य वित्त निगमों (SFCs) की साख, वित्तीय पट्टा (Financial Lease) तथा सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits)।

- **अल्पकालीन वित्त (Short-term Finance - 1 वर्ष से कम):**

इसे सामान्यतः 'कार्यशील पूँजी' (Working Capital) कहा जाता है। इसका उपयोग कारखाने के दैनिक परिचालन व्ययों को पूरा करने के लिए किया जाता है; जैसे—कच्चा माल खरीदना, मजदूरी और वेतन का भुगतान, बिजली और पानी के बिल चुकाना तथा तैयार माल की बिक्री से नकद वसूली होने तक की अंतरिम अवधि का प्रबंधन। *प्रमुख साधन:* बैंक ओवरड्राफ्ट, नकद साख (Cash Credit), विनिमय विपत्रों को भुनाना (Bill Discounting), व्यापारिक साख (Trade Credit) तथा वाणिज्यिक पत्र (Commercial Papers - CPs)।

3. आर्थिक विकास में औद्योगिक वित्त का महत्व:

सुदृढ़ औद्योगिक वित्त तंत्र निष्क्रिय घरेलू बचतों को उत्पादक पूँजी परिसंपत्तियों में रूपांतरित करता है, नवीन उद्यमियों को जोखिम उठाने की सामर्थ्य देता है, पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग लगाने हेतु रियायती ऋण सुलभ कराता है तथा अर्थव्यवस्था में पूँजी-निर्माण (Capital Formation) की दर को बढ़ाता है। इसके अभाव में औद्योगिक चक्र अवरुद्ध हो जाता है और इकाइयाँ आरंभिक चरण में ही रुग्णता का शिकार हो जाती हैं।

प्रश्न 12: औद्योगिक वित्त की प्रमुख कठिनाइयाँ स्पष्ट कीजिए।

1. पृष्ठभूमि एवं संस्थागत परिप्रेक्ष्य: भारत में स्वतंत्रता के बाद एक विस्तृत संस्थागत वित्तीय संरचना (IDBI, IFCL, ICICI, SFCs, SIDBI, वाणिज्यिक बैंक) विकसित की गई। इसके उपरांत भी भारतीय औद्योगिक क्षेत्र, विशेष रूप से मध्यम, लघु और उभरती हुई विनिर्माण इकाइयाँ, समय पर और कम लागत पर पर्याप्त वित्त प्राप्त करने के मामले में गंभीर संरचनात्मक कठिनाइयों का सामना करती हैं। वित्तीय बाजारों का असंतुलन और बैंकिंग प्रणाली की कठोर प्रक्रियाएं औद्योगिक संवृद्धि की गति को सीमित करती हैं।

2. प्रमुख वित्तीय कठिनाइयाँ एवं संरचनात्मक बाधाएं:

- **कॉर्पोरेट बॉन्ड बाजार (Corporate Bond Market) का अल्पविकास:** अमेरिका या यूरोप के विपरीत, भारत में दीर्घकालिक कॉर्पोरेट डेट/बॉन्ड बाजार अत्यंत संकुचित है। अधिकांश संस्थागत निवेशक केवल 'AAA' या सर्वोच्च रेटिंग वाले विशाल निगमों के बॉन्ड ही खरीदते हैं। परिणामस्वरूप, मझोले उद्योगों को दीर्घकालिक परियोजनाओं के लिए भी वाणिज्यिक बैंकों पर निर्भर रहना पड़ता है। इससे बैंकों की बैलेंस शीट में *परिसंपत्ति-देयता असंतुलन (Asset-Liability Mismatch)* उत्पन्न होता है, क्योंकि बैंकों की जमाएं अल्पकालिक होती हैं जबकि औद्योगिक ऋण दीर्घकालिक।
- **ऋण की अत्यधिक उच्च लागत (High Cost of Capital):** भारत में आधारभूत ब्याज दरें, बैंकों का एनपीए मार्जिन और विविध प्रशासनिक शुल्क मिलकर वास्तविक उधार लागत को काफी ऊंचा बना देते हैं। वियतनाम, चीन या दक्षिण कोरिया जैसे प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में भारतीय निर्माताओं को 3 से 5% तक महंगा ऋण मिलता है, जिससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है और वैश्विक निर्यात बाजार में मूल्य प्रतिस्पर्धा क्षमता कमजोर होती है।
- **कठोर संपाश्विक प्रतिभूति (Collateral) की शर्तें:** वाणिज्यिक बैंक औद्योगिक परियोजना की व्यवहार्यता (Project Viability) और भावी नकदी प्रवाह के स्थान पर अचल संपत्ति (जमीन, भवन) को गिरवी रखने पर अधिक बल देते हैं। पहली पीढ़ी के नए उद्यमियों और सेवा/तकनीक आधारित स्टार्टअप्स के पास अचल संपत्ति नहीं होती, जिससे वे संस्थागत साख तंत्र से बाहर हो जाते हैं।
- **अत्यधिक लालफीताशाही एवं संवितरण में विलंब:** औद्योगिक ऋण आवेदनों की जांच, तकनीकी व्यवहार्यता मूल्यांकन, कानूनी सत्यापन और सरकारी अनापत्तियों (NOCs) की प्रक्रिया इतनी लंबी होती है कि ऋण स्वीकृत और वितरित (Disbursed) होने में महीनों लग जाते हैं। इस समयावधि में परियोजना की कुल लागत बढ़ जाती है (Cost Overrun)।
- **लघु व मध्यम उपक्रमों (MSMEs) का वित्तीय बहिष्कार:** वित्तीय संस्थाओं का अधिकांश ऋण बड़े कॉर्पोरेट समूहों की ओर आकर्षित होता है। MSME क्षेत्र को या तो अनौपचारिक बाजार से अत्यधिक ऊंची ब्याज दरों पर साहूकारों से कर्ज लेना पड़ता है अथवा कार्यशील पूंजी के गंभीर संकट से जूझना पड़ता है।

3. निष्कर्ष: इन कठिनाइयों के समाधान हेतु देश में कॉर्पोरेट बॉन्ड बाजार को गहरा करना, क्रेडिट गारंटी ट्रस्ट (CGTMSE) का विस्तार, फिनटेक और ट्रेड रिसीवेबल्स डिस्काउंटिंग सिस्टम (TReDS) का अनिवार्य क्रियान्वयन तथा परियोजना-आधारित (Cash-flow based) वित्तीय मूल्यांकन प्रणाली को अपनाया जाना अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न 13: औद्योगिक विवाद क्या है?

1. वैधानिक परिभाषा एवं सार: औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(k) के अनुसार, औद्योगिक विवाद (Industrial Dispute) से आशय "नियोजकों और नियोजकों के बीच, या नियोजकों और कर्मकारों (श्रमिकों) के बीच, या कर्मकारों और कर्मकारों के बीच किसी ऐसे मतभेद या विवाद से है, जो नियोजन (Employment) या अनियोजन (Non-employment), नियोजन के नियमों या श्रम की दशाओं से संबंधित हो।" औद्योगिक समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से, यह कारखाने के भीतर पूंजी के स्वामियों (नियोजक) और श्रम के विक्रेताओं (कर्मकार) के मध्य आर्थिक हितों के टकराव की संस्थागत अभिव्यक्ति है। जब आपसी संवाद और समझौते के मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं, तब असंतोष खुले विवाद का रूप धारण कर लेता है।

2. औद्योगिक विवाद के प्रमुख प्रकटीकरण एवं स्वरूप:

विवाद के समय दोनों पक्ष अपनी बात मनवाने और दबाव बनाने हेतु विभिन्न उपायों का सहारा लेते हैं:

• (क) श्रमिकों द्वारा अपनाए जाने वाले हथियार:

- **हड़ताल (Strike):** औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(q) के अनुसार, श्रमिकों द्वारा सामूहिक सहमति से एक साथ कार्य बंद कर देना। इसके कई रूप होते हैं; जैसे—सांकेतिक हड़ताल, अनिश्चितकालीन हड़ताल, भूख हड़ताल तथा औजार छोड़ो हड़ताल (Pen-down / Tool-down strike)।
- **धीमे काम करो (Go-Slow):** इसमें श्रमिक कार्यस्थल पर उपस्थित रहते हैं और उपस्थिति दर्ज कराते हैं, परंतु उत्पादन की गति को जानबूझकर अत्यंत धीमा कर देते हैं, जिससे मालिक को भारी नुकसान होता है।
- **घेराव (Gherao):** प्रबंधकों और उच्च अधिकारियों को उनके कार्यालयों में बंधक बना लेना ताकि वे तात्कालिक निर्णय लेने पर विवश हों (यद्यपि यह विधिक रूप से अनुचित श्रम व्यवहार माना गया है)।
- **बहिष्कार एवं धरना (Boycott & Picketing):** कारखाने के द्वार पर एकत्र होकर अन्य श्रमिकों को काम पर जाने से रोकना और कंपनी के उत्पादों का बहिष्कार करने की अपील करना।

• (ख) नियोजकों (प्रबंधन) द्वारा अपनाए जाने वाले हथियार:

- **तालाबंदी (Lockout):** धारा 2(l) के अनुसार, नियोजक द्वारा कार्यस्थल को अस्थाई रूप से बंद कर देना या श्रमिकों को काम देने से इनकार कर देना ताकि वे प्रबंधन की शर्तों को मानने पर बाध्य हों।
- **छंटनी एवं कामबंदी (Retrenchment & Lay-off):** व्यापार में घाटे या कच्चे माल की कमी का आधार बनाकर कामगारों को नौकरी से अलग करना।
- **काली सूची (Blacklisting):** सक्रिय ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं का नाम अन्य कंपनियों को भेजकर उनके भविष्य के रोजगार को अवरुद्ध करना।

3. अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव:

औद्योगिक विवादों का परिणाम राष्ट्रीय उत्पादन में गिरावट, लाखों मानव-दिवसों की हानि (Loss of Man-days), श्रमिकों की मजदूरी में कटौती, कंपनियों का वित्तीय क्षरण तथा बाजार में आवश्यक वस्तुओं की कृत्रिम महंगाई के रूप में सामने आता है। अतः औद्योगिक शांति आर्थिक संवृद्धि की प्राथमिक कसौटी है।

प्रश्न 14: औद्योगिक स्थानिकरण के अल्फ्रेड वेबर के सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।

1. **पृष्ठभूमि एवं सैद्धांतिक उद्देश्य:** प्रसिद्ध जर्मन अर्थशास्त्री अल्फ्रेड वेबर (Alfred Weber) ने वर्ष 1909 में अपनी पुस्तक 'Über den Standort der Industrien' (Theory of the Location of Industries) में औद्योगिक स्थानिकरण का सर्वप्रथम वैज्ञानिक, क्रमबद्ध और निगमनात्मक (Deductive) मॉडल प्रस्तुत किया। वेबर का मुख्य उद्देश्य यह ज्ञात करना था कि किसी उद्योग को भौगोलिक दृष्टि से किस स्थान पर स्थापित किया जाए ताकि उत्पादन और वितरण की कुल परिवहन लागत न्यूनतम (Least Transport Cost) हो सके।

2. सिद्धांत की बुनियादी मान्यताएँ:

- कच्चे माल के स्रोत और उपभोग बाजार के केंद्र पहले से ज्ञात और भौगोलिक रूप से निश्चित हैं।
- परिवहन लागत केवल दो कारकों का सीधा फलन होती है: (i) ले जाए जाने वाले माल का भार (Weight), और (ii) तय की जाने वाली दूरी (Distance)।
(लागत = भार × दूरी = टन-किलोमीटर)।
- श्रम के केंद्र निश्चित हैं, जहाँ असीमित श्रम एक स्थिर मजदूरी दर पर उपलब्ध है।
- जलवायु और राजनीतिक दशाएं संपूर्ण क्षेत्र में समरूप (Isotropic Surface) हैं।

3. कच्चे माल का वर्गीकरण एवं पदार्थ सूचकांक (Material Index - MI):

वेबर ने कच्चे माल को दो भागों में बांटा: (i) **सर्वसुलभ पदार्थ (Ubiquitous)**: जो हर जगह मिल जाते हैं (जैसे वायु, सामान्य जल, मिट्टी), और (ii) **स्थानबद्ध पदार्थ (Localized)**: जो केवल विशिष्ट भौगोलिक स्थानों पर ही उपलब्ध होते हैं (जैसे लौह अयस्क, कोयला, खनिज तेल)। स्थानबद्ध पदार्थों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया गया: (क) **विशुद्ध पदार्थ (Pure Materials)**, जिनका भार निर्माण के दौरान नष्ट नहीं होता (जैसे कपास), और (ख) **सकल या भार-क्षयकारी पदार्थ (Weight-losing / Gross Materials)**, जिनका भार उत्पादन प्रक्रिया में काफी घट जाता है (जैसे गन्ना, चूना पत्थर, लौह अयस्क)।

पदार्थ सूचकांक (Material Index - MI) = प्रयुक्त स्थानबद्ध कच्चे माल का कुल भार / निर्मित अंतिम वस्तु का कुल भार

- **यदि $MI > 1$ (भार-क्षयकारी कच्चा माल):** उद्योग की स्थापना कच्चे माल के स्रोत के निकट होगी। उदाहरण के लिए, चीनी मिल गन्ने के खेतों के पास और लोहा-इस्पात उद्योग लौह-अयस्क व कोयला खदानों के पास लगेंगे, ताकि अवांछित अपशिष्ट ढोने की परिवहन लागत बचाई जा सके।
- **यदि $MI < 1$ (भार-वृद्धि उद्योग):** जब निर्माण में सर्वसुलभ पदार्थ (जैसे पानी) का भारी उपयोग हो, तो अंतिम वस्तु भारी हो जाती है। अतः कारखाना उपभोग बाजार के निकट लगेगा (जैसे कोल्ड ड्रिंक, बेकरी, बीयर उद्योग)।
- **यदि $MI = 1$ (विशुद्ध कच्चा माल):** कच्चा माल और तैयार माल का भार समान होता है। अतः उद्योग कच्चे माल के स्रोत पर, बाजार पर या बीच के किसी भी बिंदु पर स्थापित किया जा सकता है (जैसे सूती वस्त्र उद्योग)।

4. न्यूनतम परिवहन बिंदु से विचलन (Deviation):

वेबर ने स्पष्ट किया कि दो कारक उद्योग को न्यूनतम परिवहन बिंदु से अन्यत्र खींच सकते हैं: (i) **सस्ता श्रम (Labour Cost)**: यदि किसी अन्य स्थान पर श्रम की प्रति इकाई लागत में होने वाली बचत अतिरिक्त परिवहन व्यय से अधिक हो (आइसोडापेन - Isodapane विश्लेषण), तो उद्योग सस्ते श्रम केंद्र की ओर आकर्षित होगा। (ii) **समूहन की बचतें (Agglomeration Economies)**: जब कई उद्योग एक स्थान पर पास-पास लगते हैं, तो साझा बुनियादी ढांचे, बैंकिंग और मरम्मत सुविधाओं के लाभ से उत्पादन लागत घटती है, जिससे उद्योग का संकेंद्रण होता है।

प्रश्न 15: भारतीय औद्योगिक नीति की संक्षेप में समीक्षा कीजिए।

1. अवधारणा एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य: औद्योगिक नीति से आशय सरकार के उन विधिक सिद्धांतों, प्रशासनिक नियमों, प्राथमिकताओं और वित्तीय उपायों से है जो देश में उद्योगों के विकास, स्वामित्व, संरचना, क्षेत्रीय वितरण और विदेशी निवेश को निर्देशित एवं नियंत्रित करते हैं। स्वतंत्रता के उपरांत भारत ने उपनिवेशवादी शोषण से मुक्त होकर आत्मनिर्भर, समतामूलक और तीव्र औद्योगिक समाज के निर्माण हेतु एक नियोजित नीतिगत रूपरेखा तैयार की।

2. प्रमुख औद्योगिक नीतियों का ऐतिहासिक विकास क्रम:

- **औद्योगिक नीति संकल्प 1948:** स्वतंत्र भारत की प्रथम नीति जिसने देश में 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' (Mixed Economy) की आधारशिला रखी। उद्योगों को चार श्रेणियों में विभाजित किया गया—पूर्ण सरकारी एकाधिकार (रक्षा, परमाणु ऊर्जा, रेलवे), मूलभूत उद्योग, विनियमित निजी उद्योग तथा खुला निजी क्षेत्र।
- **औद्योगिक नीति संकल्प 1956 (भारत का आर्थिक संविधान):** द्वितीय पंचवर्षीय योजना (महालनोबिस मॉडल) के अनुरूप घोषित इस नीति का उद्देश्य समाज के समाजवादी ढांचे (Socialistic Pattern of Society) की स्थापना करना था। सार्वजनिक क्षेत्र को 'कमांडिंग हाइट्स' (सर्वोच्च नियामक स्थिति) दी गई। उद्योगों को तीन अनुसूचियों में बांटा गया:
 - अनुसूची A (17 उद्योग): केवल राज्य के अनन्य स्वामित्व वाले उद्योग।
 - अनुसूची B (12 उद्योग): जिनमें राज्य पहल करेगा, परंतु निजी क्षेत्र पूरक की भूमिका निभा सकता है।
 - अनुसूची C: शेष सभी उपभोक्ता उद्योग जिन्हें निजी क्षेत्र के लिए खुला रखा गया।
- **औद्योगिक नीतियां 1977 एवं 1980:** 1977 की नीति ने 'लघु व कुटीर उद्योगों' के संरक्षण और ग्रामीण औद्योगिकीकरण हेतु जिला उद्योग केंद्रों (DIC) की स्थापना की। 1980 की नीति ने आर्थिक दक्षता, आधुनिकीकरण और प्रतिस्पर्धात्मकता पर बल दिया।
- **नवीन औद्योगिक नीति 1991 (ऐतिहासिक युगांतरकारी मोड़):** भुगतान संतुलन के गंभीर संकट के बीच 24 जुलाई 1991 को घोषित इस नीति ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण (LPG) का सूत्रपात किया। अनिवार्य औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रथा समाप्त की गई, सार्वजनिक क्षेत्र का दायरा सीमित किया गया, विदेशी निवेश (FDI) के स्वतः मार्ग खोले गए तथा एकाधिकार नियंत्रण कानून (MRTP) की सीमाएं समाप्त की गईं।

3. आलोचनात्मक मूल्यांकन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य:

1991 से पूर्व की नीतियों ने भारत को एक विशाल, आत्मनिर्भर और विविधतापूर्ण पूंजीगत औद्योगिक आधार दिया, किंतु साथ ही लाइसेंस-परमिट राज, लालफीताशाही, सार्वजनिक उपक्रमों में भारी घाटे और तकनीकी पिछड़ेपन को भी बढ़ावा दिया। 1991 के बाद आर्थिक वृद्धि दर और विदेशी मुद्रा प्रवाह में क्रांतिकारी उछाल आया और उपभोक्ता वस्तुओं की गुणवत्ता सुधरी। इसके बावजूद, विनिर्माण क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद में अंशदान (वर्तमान में ~17%) आज भी राष्ट्रीय विनिर्माण नीति के 25% के लक्ष्य से पीछे है। वर्तमान नीतियां 'मेक इन इंडिया', पीएलआई (PLI) योजनाओं और राष्ट्रीय विनिर्माण क्लस्टरों के माध्यम से भारत को वैश्विक विनिर्माण हब बनाने की दिशा में केंद्रित हैं।

प्रश्न 16: सार्जेंट फ्लोरेस के औद्योगिक स्थानीयकरण सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

1. परिचय एवं आगमनात्मक उपागम: ब्रिटिश अर्थशास्त्री प्रो. पी. सार्जेंट फ्लोरेस (P. Sargent Florence) ने अल्फ्रेड वेबर के ज्यामितीय और निगमनात्मक (Deductive) स्थानिकरण सिद्धांत के अमूर्त स्वरूप की कड़ी आलोचना की। वेबर का सिद्धांत 'भार और दूरी' जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर टिका था। इसके विपरीत, फ्लोरेस ने वर्ष 1948 में अपनी प्रसिद्ध कृति '*Investment, Location and Size of Plant*' में एक यथार्थवादी, आगमनात्मक (Inductive) और सांख्यिकीय सिद्धांत प्रतिपादित किया। उन्होंने वास्तविक जनगणना, कारखानों के आंकड़ों और कामगारों के भौगोलिक वितरण के आधार पर उद्योगों के स्थानीयकरण का सांख्यिकीय विश्लेषण किया।

2. सिद्धांत के दो बुनियादी सांख्यिकीय उपकरण:

सार्जेंट फ्लोरेस ने उद्योगों के भौगोलिक फैलाव और संकेंद्रण को मापने हेतु दो अत्यंत महत्वपूर्ण गणितीय अवधारणाएं विकसित कीं:

(क) स्थानिकरण लब्धि (Location Quotient - LQ):

स्थानिकरण लब्धि यह दर्शाती है कि किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में किसी विशेष उद्योग का संकेंद्रण, देश भर में उस उद्योग के राष्ट्रीय औसत वितरण की तुलना में अधिक है या कम। इसका सूत्र निम्नलिखित है:

$$\text{Location Quotient (LQ)} = (\text{दिए गए क्षेत्र में उस उद्योग के श्रमिकों का \%} / \text{दिए गए क्षेत्र में कुल औद्योगिक श्रमिकों का \%})$$

- **यदि LQ = 1:** इसका अर्थ है कि उद्योग उस क्षेत्र में ठीक राष्ट्रीय औसत के अनुपात में मौजूद है (सामान्य वितरण)।
- **यदि LQ > 1:** इसका अर्थ है कि वह क्षेत्र उस विशेष उद्योग में *अत्यधिक विशिष्टीकृत (Specialized)* है और वह अपनी स्थानीय मांग पूरी करने के बाद अन्य राज्यों या देशों को माल निर्यात करता है।
- **यदि LQ < 1:** इसका अर्थ है कि वह क्षेत्र उस उद्योग के मामले में पिछड़ा हुआ है और अपनी आवश्यकताओं के लिए बाहरी क्षेत्रों से आयात पर निर्भर है।

(ख) स्थानिकरण गुणांक (Coefficient of Localization):

यह उपकरण किसी विशिष्ट उद्योग की संपूर्ण राष्ट्र में संकेंद्रित होने या समान रूप से बिखरने की सामान्य प्रवृत्ति को मापता है। इसकी गणना करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में उस उद्योग के श्रमिकों के प्रतिशत और कुल औद्योगिक श्रमिकों के प्रतिशत के धनात्मक अंतरों का योग करके 100 से भाग दिया जाता है। इसका मान 0 से 1 के बीच होता है:

- **यदि मान 0 के निकट हो (न्यून गुणांक):** वह उद्योग पूरे देश में जनसंख्या और कार्यबल के अनुसार सर्वत्र समान रूप से बिखरा हुआ है। यह 'सर्वव्यापी उद्योग' (Dispersed Industry) कहलाता है; जैसे—ईट भट्टे, आटा चक्की, पेय पदार्थ।
- **यदि मान 1 के निकट हो (उच्च गुणांक):** वह उद्योग किसी एक या दो विशिष्ट क्षेत्रों में अत्यधिक संकेंद्रित है (Centrally Localized Industry); जैसे—जूट उद्योग (पश्चिम बंगाल) या रत्न-आभूषण उद्योग।

3. सिद्धांत की उपयोगिता एवं मूल्यांकन:

सार्जेंट फ्लोरेस का सिद्धांत व्यावहारिक और अनुभवजन्य होने के कारण आर्थिक भूगोलवेत्ताओं और योजना आयोगों के लिए अत्यंत उपयोगी रहा है। यह सरकार को यह तय करने में सांख्यिकीय आधार प्रदान करता है कि किन पिछड़े क्षेत्रों में किन उद्योगों को सब्सिडी और प्रोत्साहन देकर संतुलित क्षेत्रीय विकास स्थापित किया जा सकता है।

प्रश्न 17: भारत में सूती वस्त्र उद्योग की प्रमुख समस्या क्या है?

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं आर्थिक महत्व: सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textile Industry) भारत का सबसे प्राचीन, विस्तृत और कृषि के पश्चात देश में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सर्वाधिक रोजगार (लगभग 4.5 करोड़ लोगों को) उपलब्ध कराने वाला सबसे बड़ा संगठित कृषि-आधारित (Agro-based) उद्योग है। भारत में प्रथम आधुनिक सूती मिल 1818 में फोर्ट ग्लॉस्टर (कोलकाता) में तथा पहली वास्तविक सफल मिल 1854 में कावसजी डाबर द्वारा मुंबई में स्थापित की गई थी। इसके विशाल आकार और निर्यात क्षमता के बावजूद, वर्तमान में यह उद्योग तीव्र वैश्विक प्रतिस्पर्धा और घरेलू संरचनात्मक विसंगतियों के कारण गंभीर संकट के दौर से गुजर रहा है।

2. सूती वस्त्र उद्योग की प्रमुख संरचनात्मक समस्याएँ:

- **कच्चे माल (कपास) की गुणवत्ता और मूल्यों में अत्यधिक अस्थिरता:** भारत विश्व में कच्चे कपास का सबसे बड़ा उत्पादक अवश्य है, परंतु लंबे रेशे (Long-staple) वाले उच्च कोटि के कपास का घरेलू उत्पादन बहुत सीमित है। भारत को उच्च गुणवत्ता वाले धागे के निर्माण हेतु मिस्र, अमेरिका और सूडान से लंबा रेशा आयात करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, मानसूनी अनिश्चितताओं, कीटों (जैसे पिक बोलवॉर्म) के हमलों और सट्टेबाजी के कारण कपास की घरेलू कीमतों में भारी उतार-चढ़ाव रहता है, जिससे मिलों की उत्पादन योजनाएं लड़खड़ा जाती हैं।
- **पुरानी मशीनरी एवं अप्रचलित तकनीक:** देश की अधिकांश संगठित कताई और बुनाई मिलों में मशीनें कई दशक पुरानी हैं। कताई में आधुनिक रोटार स्पिनिंग और बुनाई में स्वचालित शटललेस लूम (Shuttleless Looms) का अनुपात वैश्विक प्रतिस्पर्धियों (चीन, तुर्की) की तुलना में बहुत न्यून है। पुरानी मशीनों के कारण श्रम उत्पादकता कम रहती है, धागा बार-बार टूटता है और कपड़े में दोष (Defects) अधिक आते हैं।
- **अत्यधिक संरचनात्मक विखंडन (Structural Fragmentation):** भारत का वस्त्र उद्योग तीन खंडों में बंटा है: (क) संगठित कंपोजिट मिलें, (ख) विकेंद्रीकृत पावरलूम, और (ग) हथकरघा (Handloom)। देश के कुल कपड़ा उत्पादन का 80% से अधिक भाग छोटे और विकेंद्रीकृत पावरलूम क्षेत्र में तैयार होता है। इस विखंडन के कारण इकाइयों को 'पैमाने की बचतें' (Economies of Scale) नहीं मिल पातीं, गुणवत्ता नियंत्रण असंभव हो जाता है और वे बड़े वैश्विक निर्यात आदेशों को समय पर पूरा नहीं कर पातीं।
- **उच्च बिजली दरें एवं लॉजिस्टिक्स लागत:** भारत में औद्योगिक विद्युत दरें बांग्लादेश और वियतनाम की तुलना में 30 से 40% तक अधिक हैं। साथ ही, उत्पादन केंद्रों (जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु) से तैयार माल को उत्तरी बंदरगाहों तक भेजने में भारी लॉजिस्टिक्स व्यय होता है।
- **कड़ी अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा एवं टैरिफ विषमता:** बांग्लादेश, वियतनाम और कंबोडिया को यूरोपीय संघ और अमेरिका के बाजारों में 'अल्पविकसित देश' (LDC) होने के नाते शून्य-शुल्क (Duty-free access) का लाभ मिलता है, जबकि भारतीय वस्त्रों पर 9 से 12% तक आयात शुल्क लगता है, जिससे भारतीय उत्पाद मूल्य प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं।

3. समाधान की दिशा: इस पारंपरिक उद्योग के कायाकल्प हेतु केंद्र सरकार की 'पीएम-मित्र' (PM-MITRA) मेगा टेक्स्टाइल पार्क योजना, संशोधित प्रौद्योगिकी उन्नयन निधि योजना (ATUFS) का प्रभावी क्रियान्वयन तथा कताई से लेकर परिधान निर्माण तक एकीकृत आपूर्ति श्रृंखला का निर्माण अनिवार्य है।

प्रश्न 18: SIDCO की क्या भूमिका है?

1. परिचय एवं संस्थागत स्वरूप: राज्य लघु उद्योग विकास निगम (Small Industries Development Corporation - SIDCO) राज्य स्तर पर स्थापित एक स्वायत्त सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम है। इसकी स्थापना देश के विभिन्न राज्यों में सूक्ष्म, लघु और ग्रामीण उद्यमों (MSMEs) के संवर्धन, विकास और संरक्षण के उद्देश्य से एक शीर्ष नोडल एजेंसी के रूप में की गई थी। बड़े पैमाने के उद्योगों के पास वित्तीय और प्रबंधकीय संसाधन प्रचुर मात्रा में होते हैं, जबकि लघु उद्यमियों को भूमि, कच्चा माल, शेड, तकनीक और विपणन जैसे बुनियादी तत्वों के लिए भारी संघर्ष करना पड़ता है। SIDCO इसी संस्थागत अंतराल को पाटने का कार्य करता है।

2. SIDCO की प्रमुख विकासात्मक भूमिकाएँ एवं कार्य:

- **औद्योगिक बस्तियों (Industrial Estates) की स्थापना एवं विकास:** SIDCO का सबसे बुनियादी कार्य राज्य के विभिन्न जिलों और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में पूर्णतः सुसज्जित 'औद्योगिक संपदाएं' विकसित करना है। यह नए उद्यमियों को रियायती दरों पर विकसित भूखंड (Developed Plots), बने-बनाए औद्योगिक शेड (Built-up Factory Sheds), निर्बाध चौबीसों घंटे विद्युत आपूर्ति, औद्योगिक जल, पक्की सड़कें, जल-निकासी तथा दूरसंचार नेटवर्क सुलभ कराता है। इससे पहली पीढ़ी के उद्यमियों का प्रारंभिक पूंजी व्यय बहुत घट जाता है।
- **कच्चे माल की थोक खरीद एवं सुगम वितरण:** लघु इकाइयाँ अपनी सीमित वित्तीय क्षमता के कारण बड़े उत्पादकों से थोक में कच्चा माल नहीं खरीद पातीं। SIDCO राज्य स्तर पर दुर्लभ और आवश्यक कच्चे माल (जैसे लोहा-इस्पात, एल्युमिनियम, पैराफिन वैक्स, प्लास्टिक ग्रेन्यूल्स, कास्टिक सोडा, कोयला आदि) को सीधे प्राथमिक उत्पादकों से थोक भाव पर खरीदकर अपने जिला डिपो के माध्यम से छोटे निर्माताओं को उचित व स्थिर मूल्य पर उपलब्ध कराता है।
- **विपणन सहायता (Marketing Assistance):** विपणन लघु क्षेत्र की सबसे कमजोर कड़ी है। SIDCO लघु उद्योगों के उत्पादों को बेचने हेतु राज्य सरकार के विभागों, सार्वजनिक उपक्रमों और रेलवे की खरीद निविदाओं में लघु इकाइयों की अनिवार्य भागीदारी सुनिश्चित कराता है। यह सरकारी खरीद में लघु उद्योगों को मूल्य वरीयता (Price Preference) दिलाता है तथा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय व्यापार मेलों और प्रदर्शनियों का आयोजन करता है।
- **किराया-क्रय योजना (Hire-Purchase System) के तहत मशीनरी आपूर्ति:** सीमित पूंजी वाले कुशल कारीगरों और नए तकनीकी स्नातकों को आधुनिक मशीनें और टूल्स आसान किश्तों और नाममात्र के अग्रिम भुगतान पर उपलब्ध कराना, ताकि वे तकनीक के अभाव में उत्पादन बंद न करें।
- **साझा सुविधा केंद्र (Common Facility Centres - CFCs):** आधुनिक विनिर्माण में महंगे परीक्षण उपकरण, रासायनिक प्रयोगशालाएं और टूल रूम आवश्यक होते हैं, जिन्हें एक अकेली छोटी इकाई नहीं खरीद सकती। SIDCO क्लस्टरों में ऐसे साझा केंद्र स्थापित करता है जहाँ सभी लघु इकाइयाँ न्यूनतम सेवा शुल्क देकर अपने उत्पादों का परीक्षण, प्रमाणीकरण और डिजाइनिंग करा सकती हैं।

3. निष्कर्ष: SIDCO ने जिला स्तर पर औद्योगिक विकेंद्रीकरण, स्थानीय संसाधनों के दोहन और ग्रामीण युवाओं को नौकरी खोजने वाले के स्थान पर नौकरी प्रदाता (Job Creator) बनाने में एक मार्गदर्शक और संरक्षणात्मक अभिभावक की भूमिका निभाई है।

प्रश्न 19: औद्योगिक विकास क्या है?

1. अवधारणा एवं विस्तृत अर्थ: औद्योगिक विकास (Industrial Development) केवल कारखानों की संख्या या विनिर्माण की कुल मात्रा में होने वाली सामान्य सांख्यिकीय वृद्धि नहीं है। व्यापक अर्थशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में, यह एक बहुआयामी, संरचनात्मक और गुणात्मक रूपांतरण की प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत संपूर्ण विनिर्माण क्षेत्र की उत्पादकता, तकनीकी सक्षमता, पूंजी सघनता और अंतर-क्षेत्रीय सम्बद्धता का समग्र उत्थान होता है। आर्थिक विकास के संरचनात्मक सिद्धांतकारों—जैसे साइमन कुजनेट्स और कॉलिन क्लार्क—के अनुसार, राष्ट्रीय आय एवं रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र (कृषि) के सापेक्षिक अंश का घटना और द्वितीयक क्षेत्र (उद्योग) के अंश का सतत बढ़ना ही वास्तविक औद्योगिक विकास का परिचायक है।

2. औद्योगिक विकास के मूलभूत आयाम:

- **उत्पादन संरचना का गहन विविधीकरण:** आरंभिक दौर में औद्योगिक ढांचा केवल प्राथमिक उपभोक्ता वस्तुओं (जैसे सूती कपड़ा, चीनी, जूट) तक सीमित होता है। औद्योगिक विकास की परिपक्व अवस्था तब आती है जब अर्थव्यवस्था पूंजीगत सामान (Capital Goods), भारी मशीनरी, रसायन, इलेक्ट्रॉनिक्स, सेमीकंडक्टर और उच्च प्रौद्योगिकी उत्पादों का निर्माण करने लगती है।
- **तकनीकी उन्नयन एवं कुल कारक उत्पादकता (TFP):** केवल श्रम और पूंजी की मात्रा बढ़ाकर उत्पादन बढ़ाना सतही वृद्धि है। वास्तविक विकास तब होता है जब वैज्ञानिक अनुसंधान, नवाचार और आधुनिक प्रबंधन के बल पर साधनों की सीमांत उत्पादकता में क्रांतिकारी सुधार हो।
- **अग्रगामी एवं पश्चगामी सम्बद्धता (Forward & Backward Linkages):** अल्बर्ट हिशमैन के अनुसार, औद्योगिक विकास की गहराई इस बात से आंकी जाती है कि उद्योग अन्य क्षेत्रों को कितना प्रेरित करता है। एक एकीकृत इस्पात संयंत्र खनन क्षेत्र (पश्चगामी) को गति देता है और ऑटोमोबाइल, रेलवे व निर्माण क्षेत्र (अग्रगामी) का विस्तार करता है।
- **संस्थागत एवं मानव पूंजी निर्माण:** कुशल तकनीकी कार्यबल, सुदृढ़ वित्तीय बाजार, बौद्धिक संपदा संरक्षण, लॉजिस्टिक्स नेटवर्क और औद्योगिक नीतियों का परिपक्व होना औद्योगिक विकास की अनिवार्य शर्त है।

3. आर्थिक प्रगति में इसका महत्व:

औद्योगिक विकास राष्ट्रीय आय की संवृद्धि दर को त्वरित करता है, कृषि क्षेत्र में विद्यमान प्रच्छन्न बेरोजगारी को उत्पादक आजीविका में बदलता है, आयातों पर निर्भरता घटाकर विदेशी मुद्रा की बचत करता है, तथा राष्ट्र की सुरक्षा और संप्रभुता हेतु आधुनिक रक्षा उपकरणों का आधार तैयार करता है।

4. निष्कर्ष: वर्तमान 21वीं सदी में औद्योगिक विकास की परिभाषा का विस्तार हुआ है। आज यह केवल धुआं उगलती चिमनियों का विस्तार नहीं है, बल्कि डिजिटल ऑटोमेशन (उद्योग 4.0), कार्बन-तटस्थता (हरित औद्योगिकीकरण) और वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में उच्च मूल्यवर्धन हासिल करने की समेकित यात्रा है।

प्रश्न 20: SIFCs (SFCs) का अर्थ समझाइए।

1. पृष्ठभूमि एवं वैधानिक आधार: राज्य औद्योगिक वित्त निगम (State Industrial Finance Corporations / State Financial Corporations - SFCs) राज्य स्तर पर स्थापित विशेषीकृत विकास वित्तीय संस्थान हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् 1948 में जब राष्ट्रीय स्तर पर 'भारतीय औद्योगिक वित्त निगम' (IFCI) की स्थापना की गई, तो यह अनुभव किया गया कि अखिल भारतीय संस्थाएं केवल बड़े और वृहद् कॉर्पोरेट घरानों की वित्तीय आवश्यकताओं की ही पूर्ति कर सकती हैं। प्रत्येक राज्य में फैले छोटे, मध्यम और उभरते उद्यमियों की ऋण आवश्यकताओं को राष्ट्रीय स्तर से पूरा करना संभव नहीं था। इस संस्थागत रिक्तता को भरने हेतु भारतीय संसद ने 'राज्य वित्त निगम अधिनियम, 1951' (SFCs Act, 1951) पारित किया, जिसके अंतर्गत देश के विभिन्न राज्यों में राज्य वित्त निगमों की स्थापना की गई (जैसे उत्तर प्रदेश में UPSFC, पंजाब में PFC आदि)।

2. SFCs की स्थापना के प्रमुख उद्देश्य:

- **लघु एवं मध्यम उद्योगों (MSMEs) का वित्तपोषण:** राज्य के सूक्ष्म, लघु और मध्यम श्रेणी के औद्योगिक उपक्रमों को आसान शर्तों पर मध्यमकालीन व दीर्घकालीन वित्तीय संबल प्रदान करना।
- **क्षेत्रीय विषमताओं का निवारण:** राज्य के औद्योगिक रूप से पिछड़े, गैर-नगरीय और दूरदराज के क्षेत्रों में नए उद्यम लगाने वाले उद्यमियों को रियायती ब्याज दर और आसान किश्तों पर पूंजी सुलभ कराना।
- **उद्यमशीलता का संवर्धन:** तकनीकी स्नातकों, कुशल कारीगरों और प्रथम पीढ़ी के उद्यमियों को वित्तीय गारंटी और परामर्श देकर औद्योगिक संस्कृति का प्रसार करना।

3. मुख्य कार्य एवं परिचालन गतिविधियाँ:

- **सावधि ऋण (Term Loans):** नई औद्योगिक इकाइयों की स्थापना, पुरानी इकाइयों के आधुनिकीकरण अथवा क्षमता विस्तार हेतु 20 वर्ष तक की अवधि के लिए सावधि ऋण स्वीकृत करना।
- **अभिगोपन (Underwriting):** राज्य के भीतर औद्योगिक कंपनियों द्वारा जारी किए जाने वाले अंशों (Shares), ऋणपत्रों (Debentures) और बॉन्ड्स का अभिगोपन करना।
- **गारंटी सुविधा:** औद्योगिक इकाइयों द्वारा अनुसूचित बैंकों अथवा राज्य सहकारी बैंकों से लिए जाने वाले ऋणों की वापसी हेतु गारंटी प्रदान करना।
- **विविध सेवा क्षेत्रों का वित्तपोषण:** विनिर्माण के अतिरिक्त होटल उद्योग, परिवहन ऑपरेटरों, वाणिज्यिक परिसरों, स्वास्थ्य सेवाओं (निजी अस्पतालों/ डायग्नोस्टिक केंद्रों) और आईटी इकाइयों को अवसंरचना विस्तार हेतु वित्त देना।

4. वर्तमान चुनौतियाँ एवं प्रासंगिकता:

1990 के दशक के वित्तीय क्षेत्र सुधारों के बाद वाणिज्यिक बैंकों के आक्रामक प्रवेश, पर्याप्त पुनर्वित्त के अभाव, ऋण वसूली की कमजोर विधिक प्रणाली और बढ़ते गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPA) के कारण अधिकांश SFCs गंभीर वित्तीय संकट से घिर गए। वर्तमान में इनके पुनरुद्धार हेतु SIDBI के साथ डिजिटल एकीकरण और सूक्ष्म-वित्त प्रणालियों का पुनर्गठन अनिवार्य माना जा रहा है।

प्रश्न 21: श्रम कानून क्या है? स्पष्ट कीजिए।

1. अवधारणा, परिभाषा एवं सामाजिक दर्शन: श्रम कानून (Labour Law / Industrial Jurisprudence) उन सभी विधिक संविधियों, प्रशासनिक विनियमों, न्यायिक निर्णयों और संविदात्मक सिद्धांतों की समग्रता है जो नियोजक (पूँजीपति/मालिक), कर्मकार (श्रमिक) तथा उनके प्रतिनिधि संगठनों (ट्रेड यूनियनों) के पारस्परिक संबंधों, अधिकारों, कर्तव्यों और सेवा शर्तों को नियमित एवं नियंत्रित करते हैं। शास्त्रीय अर्थशास्त्र के मुक्त बाजार सिद्धांत में श्रम को केवल एक क्रय-विक्रय योग्य वस्तु माना जाता था, जिससे पूँजीपति वर्ग द्वारा श्रमिकों का अमानवीय शोषण होता था। श्रम कानून का मूल सामाजिक दर्शन इस शक्ति-असंतुलन को समाप्त कर कार्यस्थल पर मानवीय गरिमा, आर्थिक न्याय और सामाजिक सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

2. श्रम कानूनों का प्रमुख विषयगत वर्गीकरण:

• कार्यस्थल की भौतिक दशाओं व सुरक्षा संबंधी कानून:

कारखाना अधिनियम, 1948 (Factories Act): यह कारखानों में काम के दैनिक व साप्ताहिक घंटे (अधिकतम 48 घंटे प्रति सप्ताह), विश्राम अंतराल, अतिरिक्त समय (Overtime) का दोगुना भुगतान, स्वच्छता, पर्याप्त वेंटिलेशन, प्राथमिक चिकित्सा, खतरनाक मशीनों की फेंसिंग और बाल श्रम के पूर्ण निषेध का वैधानिक प्रावधान करता है।

• पारिश्रमिक एवं मजदूरी संरक्षण कानून:

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948: सरकार को विभिन्न अनुसूचित रोजगारों में जीवन-निर्वाह लागत के आधार पर न्यूनतम मजदूरी तय करने और समय-समय पर महंगाई भत्ते (VDA) के संशोधन का अधिकार देता है।

मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936: यह सुनिश्चित करता है कि श्रमिकों को उनका वेतन एक निश्चित समयसीमा के भीतर नकद या बैंक खाते में मिले और उसमें से कोई गैर-कानूनी कटौती न की जाए।

• सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याणकारी कानून:

कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (ESI Act) तथा *कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम, 1952 (EPF Act):* बीमारी, मातृत्व, कार्यस्थल दुर्घटना, विकलांगता और वृद्धावस्था में श्रमिक और उसके परिवार को वित्तीय व चिकित्सा सुरक्षा कवच देते हैं।

• औद्योगिक शांति एवं संबंध कानून:

ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 एवं *औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947:* श्रमिकों को संगठन बनाने, सामूहिक सौदेबाजी करने, हड़ताल के नियम तय करने तथा विवादों के त्रिपक्षीय समाधान (सुलह, पंचाट व श्रम न्यायालय) की विधिक रूपरेखा प्रदान करते हैं।

3. भारत में समकालीन श्रम सुधार (चार नवीन श्रम संहिताएं):

उद्योगों पर अनुपालन बोझ कम करने और असंगठित क्षेत्र के करोड़ों कामगारों को कानूनी संरक्षण देने हेतु भारत सरकार ने 29 पुराने केंद्रीय श्रम कानूनों को समाहित कर चार व्यापक संहिताओं (Labour Codes) का निर्माण किया है: (i) वेतन संहिता, (ii) औद्योगिक संबंध संहिता, (iii) सामाजिक सुरक्षा संहिता, तथा (iv) व्यावसायिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कार्यदशा संहिता।

4. निष्कर्ष: एक संतुलित श्रम कानून प्रणाली न तो इतनी कठोर होनी चाहिए कि वह औद्योगिक निवेश और रोजगार सृजन को अवरुद्ध कर दे, और न ही इतनी लचीली कि कामगारों का शोषण होने लगे। यह आर्थिक दक्षता और सामाजिक न्याय के बीच एक संतुलनकारी सेतु है।

प्रश्न 22: वर्ष 1991 में औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताओं की व्याख्या कीजिए।

1. ऐतिहासिक संदर्भ एवं आर्थिक संकट: 24 जुलाई 1991 को भारत के आर्थिक इतिहास में युगांतरकारी मोड़ आया जब तत्कालीन पी. वी. नरसिम्हा राव सरकार ने वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में 'नवीन औद्योगिक नीति, 1991' की घोषणा की। भारत उस समय विदेशी मुद्रा भंडार के अभूतपूर्व संकट (मात्र दो सप्ताह के आयात हेतु विदेशी मुद्रा शेष थी), दोहरे अंकों की महंगाई, राजकोषीय दिवालियेपन और भुगतान संतुलन के गंभीर संकट से जूझ रहा था। स्वतंत्रता के बाद से चले आ रहे राज्य-नियंत्रित, संरक्षणवादी और भारी लाइसेंसिंग वाले आर्थिक मॉडल ने अक्षमता और गतिरोध को जन्म दे दिया था। 1991 की नीति ने इस 'लाइसेंस-परमिट-कोटा राज' पर अंतिम प्रहार करते हुए अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुख, प्रतिस्पर्धी और वैश्विक बनाने की नींव रखी।

2. नवीन औद्योगिक नीति 1991 की प्रमुख विशेषताएं:

- **औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रणाली का व्यापक उन्मूलन (Delicensing):** सुरक्षा, सामरिक महत्व, खतरनाक रसायनों और पर्यावरणीय संवेदनशीलता से जुड़े मात्र 18 उद्योगों को छोड़कर अन्य सभी उद्योगों के लिए अनिवार्य लाइसेंस लेने की शर्त समाप्त कर दी गई (कालांतर में इसे घटाकर केवल 4-5 तक सीमित कर दिया गया)। इससे उद्यमियों को सरकारी दफ्तरों के चक्कर काटने से मुक्ति मिली।
- **सार्वजनिक क्षेत्र का अनारक्षण (Dereservation of PSUs):** 1956 की औद्योगिक नीति में जो 17 आधारभूत उद्योग केवल सरकार के लिए आरक्षित थे, उनकी संख्या घटाकर पहले 8 और बाद में मात्र 2 (परमाणु ऊर्जा और रेलवे परिचालन) कर दी गई। रक्षा विनिर्माण, भारी धातु, बिजली और दूरसंचार जैसे कोर क्षेत्रों को निजी पूंजी के लिए पूरी तरह खोल दिया गया।
- **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) का उदारीकरण:** 34 उच्च प्राथमिकता वाले औद्योगिक क्षेत्रों में 51% तक विदेशी प्रत्यक्ष इक्विटी निवेश को भारतीय रिज़र्व बैंक के 'स्वचालित मार्ग' (Automatic Route) से बिना किसी नौकरशाही बाधा के मंजूरी दी गई। विदेशी तकनीकी सहयोग और रॉयल्टी समझौतों के नियमों को अत्यधिक सरल बनाया गया।
- **MRTP अधिनियम की कठोर सीमाओं की समाप्ति:** 'एकाधिकार एवं प्रतिबंधात्मक व्यापार व्यवहार (MRTP) अधिनियम' के तहत 100 करोड़ रुपये से अधिक परिसंपत्ति वाली कंपनियों को क्षमता विस्तार, नए संयंत्र लगाने या विलय करने से पहले पूर्व सरकारी अनुमति लेनी पड़ती थी। 1991 की नीति ने परिसंपत्ति सीमा का यह प्रतिबंध हटा दिया ताकि भारतीय फर्मों भी पैमाने की बचतें हासिल कर वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बन सकें।
- **सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का विनिवेश (Disinvestment):** घाटे में चल रहे सार्वजनिक उद्यमों में राजकोषीय बोझ कम करने, प्रबंधकीय कार्यकुशलता लाने और वित्तीय अनुशासन स्थापित करने हेतु सरकार ने अपनी इक्विटी पूंजी का आंशिक हिस्सा वित्तीय संस्थाओं और आम जनता को बेचने की नीति घोषित की। साथ ही बीमार पीएसयू को BIFR के दायरे में लाया गया।

3. प्रभाव एवं मूल्यांकन:

इस नीति ने भारतीय उद्योग जगत को दशकों के बंधनों से मुक्त कर दिया। इसके फलस्वरूप ऑटोमोबाइल, उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स, आईटी, फार्मास्यूटिकल्स और दूरसंचार में निजी व विदेशी निवेश की बाढ़ आ गई, जिससे जीडीपी वृद्धि दर में तेज उछाल दर्ज किया गया। यद्यपि इसने क्षेत्रीय विषमताओं और आयात प्रतिस्पर्धा जैसी कुछ नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं, किंतु इसने आधुनिक भारत के औद्योगिक कायाकल्प का निर्विवाद खाका तैयार किया।

प्रश्न 23: भारत में औद्योगिक विकास की प्रमुख नवीन प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिए।

1. समकालीन परिप्रेक्ष्य: 21वीं सदी के तीसरे दशक में भारतीय विनिर्माण और औद्योगिक विकास एक ऐतिहासिक संरचनात्मक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। भू-राजनीतिक समीकरणों, कोविड-19 के पश्चात वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला के पुनर्गठन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के अभ्युदय और जलवायु परिवर्तन की वैश्विक चिंताओं ने भारतीय औद्योगिकीकरण के स्वरूप, प्राथमिकताओं और रणनीतियों को पूरी तरह बदल दिया है। भारत अब केवल श्रम-सघन और कम मूल्यवर्धित वस्तुओं के विनिर्माता से आगे बढ़कर उच्च तकनीक, ज्ञान-आधारित और वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं (Global Value Chains) का अभिन्न अंग बनने की दिशा में अग्रसर है।

2. भारत में औद्योगिक विकास की प्रमुख नवीन प्रवृत्तियाँ:

- **उत्पादन लिंक प्रोत्साहन (PLI) योजनाएं:** सरकार ने पारंपरिक इनपुट सब्सिडी देने के स्थान पर 'आउटपुट-आधारित प्रोत्साहन' की क्रांतिकारी नीति अपनाई है। इलेक्ट्रॉनिक्स, फार्मास्यूटिकल्स, उन्नत रसायन सेल (ACC) बैटरी, सौर पैनल, ऑटोमोबाइल और विशेष इस्पात सहित 14 प्रमुख विनिर्माण क्षेत्रों में लगभग 1.97 लाख करोड़ रुपये के परिव्यय वाली पीएलआई योजना लागू की गई है। इसके परिणामस्वरूप भारत स्मार्टफोन असेंबली और निर्माण में दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक बन चुका है।
- **उद्योग 4.0 और साइबर-फिजिकल प्रणालियों का अंगीकरण:** भारतीय विनिर्माण इकाइयों में अब इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IoT), बिग डेटा एनालिटिक्स, औद्योगिक रोबोटिक्स, 3D प्रिंटिंग और प्रेडिक्टिव मेंटनेंस का व्यापक प्रयोग हो रहा है। इससे डाउनटाइम घट रहा है, ऊर्जा की बचत हो रही है और उत्पादों की गुणवत्ता वैश्विक स्तर की हो रही है।
- **हरित विनिर्माण एवं डीकार्बोनाइजेशन (Green Manufacturing):** औद्योगिक इकाइयों पर कार्बन फुटप्रिंट घटाने का भारी दबाव है। राष्ट्रीय हरित हाइड्रोजन मिशन (National Green Hydrogen Mission), उद्योगों द्वारा कैप्टिव सौर व पवन ऊर्जा संयंत्रों की स्थापना, चक्रीय अर्थव्यवस्था (Circular Economy) तथा शून्य तरल निर्वहन (Zero Liquid Discharge) को विनिर्माण प्रक्रियाओं का अभिन्न अंग बनाया जा रहा है।
- **'चीन प्लस वन' (China Plus One) रणनीति का लाभ:** पश्चिमी बहुराष्ट्रीय कंपनियां भू-राजनीतिक जोखिमों को कम करने हेतु चीन के बाहर वैकल्पिक विनिर्माण अड्डों की तलाश कर रही हैं। एप्पल (Foxconn, Pegatron), टाटा इलेक्ट्रॉनिक्स और वैश्विक सेमीकंडक्टर कंपनियां भारत में अपने मेगा संयंत्र स्थापित कर रही हैं।
- **उद्यमिता एवं डीप-टेक स्टार्टअप इकोसिस्टम:** भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा स्टार्टअप इकोसिस्टम बन चुका है। अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी (Space-tech), रक्षा विनिर्माण, इलेक्ट्रिक वाहन (EV) और ड्रोन निर्माण में युवा निजी उद्यमियों का अभूतपूर्व प्रवेश हुआ है।
- **लॉजिस्टिक्स का एकीकृत कार्यालय:** 'पीएम गति शक्ति राष्ट्रीय मास्टर प्लान' और समर्पित फ्रेट कॉरिडोर (DFC) के माध्यम से देश में लॉजिस्टिक्स लागत को सकल घरेलू उत्पाद के 14% से घटाकर एकल अंक (8-9%) पर लाने का प्रयास चल रहा है।

3. निष्कर्ष: ये नवीन प्रवृत्तियाँ स्पष्ट करती हैं कि भारतीय उद्योग जगत पारंपरिक संरक्षणवादी मानसिकता से बाहर निकलकर वैश्विक प्रतिस्पर्धा, उच्च गुणवत्ता और धारणीयता (Sustainability) के नए युग में प्रवेश कर चुका है।

प्रश्न 24: श्रम संघ क्या है? इसके कार्य क्या हैं? उल्लेख कीजिए।

1. अवधारणा एवं वैधानिक परिभाषा: श्रम संघ (Trade Union / Labour Union) औद्योगिक समाज का वह अनिवार्य लोकतांत्रिक संगठन है जो कामगारों के सामूहिक हितों की रक्षा एवं संवर्धन हेतु निर्मित किया जाता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री सिडनी एवं बीट्रिस वेब (Sidney & Beatrice Webb) के अनुसार, "श्रम संघ पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले श्रमिकों का एक स्थायी संगठन है, जिसका प्राथमिक उद्देश्य उनके कार्य के नियमों और जीवन की दशाओं को बनाए रखना या उनमें सुधार करना होता है।" भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 की धारा 2(h) के अंतर्गत, श्रम संघ कर्मकारों और नियोजकों के बीच, या कर्मकारों और कर्मकारों के बीच संबंधों को नियमित करने तथा व्यापार या व्यवसाय के संचालन पर प्रतिबंधात्मक शर्तें लागू करने के उद्देश्य से गठित एक विधिक निकाय है।

2. श्रम संघों के प्रमुख बहुआयामी कार्य:

औद्योगिक अर्थशास्त्र में श्रम संघों के कार्यों को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:

(क) सुरक्षात्मक एवं सौदेबाजी संबंधी कार्य (Intra-mural / Militant Functions):

- **सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining):** असंगठित व्यक्तिगत श्रमिक की सौदेबाजी शक्ति पूंजीपति के सामने शून्य होती है। ट्रेड यूनियनों सभी श्रमिकों की ओर से संगठित होकर प्रबंधन के साथ उचित मजदूरी, महंगाई भत्ता, वार्षिक बोनस, कार्य के दैनिक घंटे, विश्राम अंतराल और सवेतन अवकाश हेतु समझौते करती हैं।
- **अनुचित निष्कासन एवं प्रताड़ना से सुरक्षा:** प्रबंधन द्वारा श्रमिकों की मनमानी छंटनी, अवैध निलंबन, पक्षपातपूर्ण स्थानांतरण या दुर्भावनापूर्ण बर्खास्तगी के विरुद्ध आवाज उठाना और श्रम न्यायालयों व न्यायाधिकरणों में उनका विधिक प्रतिनिधित्व करना।
- **दबावकारी कदम:** जब शांतिपूर्ण वार्ताएं विफल हो जाती हैं, तो अपनी वैध मांगों को मनवाने हेतु विधिक रूप से हड़ताल, धरना, प्रदर्शन और कार्य बहिष्कार का नेतृत्व करना।

(ख) रचनात्मक एवं कल्याणकारी कार्य (Extra-mural / Fraternal Functions):

- **पारस्परिक सहायता एवं सामाजिक सुरक्षा:** बीमारी, दुर्घटना, लंबी बेरोजगारी या आकस्मिक मृत्यु की स्थिति में अपने सदस्यों और उनके आश्रितों को संघ के कल्याण कोष से आपातकालीन वित्तीय सहायता देना।
- **श्रमिक शिक्षा एवं साक्षरता:** कामगारों को उनके विधिक अधिकारों, कारखाना अधिनियम के सुरक्षा मानकों और श्रम संहिताओं के प्रति जागरूक बनाने हेतु कार्यशालाओं और पुस्तकालयों का संचालन करना।
- **नागरिक व मनोरंजक सुविधाएं:** श्रमिकों की जीवन-गुणवत्ता सुधारने हेतु आवास समितियां, सहकारी उपभोक्ता भंडार, खेलकूद प्रतियोगिताएं और सांस्कृतिक क्लब स्थापित करना।

(ग) राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्य (Political & Macro-economic Functions):

- श्रम-हितैषी नीतियों, न्यूनतम मजदूरी निर्धारण और सामाजिक सुरक्षा कानूनों के निर्माण हेतु संसद और राज्य विधानसभाओं पर लोकतांत्रिक दबाव बनाना।
- कारखानों में अनुशासन, समयबद्धता और औद्योगिक शांति बनाए रखकर देश के सकल औद्योगिक उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने में सहयोग देना।

3. निष्कर्ष: एक प्रबुद्ध और उत्तरदायी श्रम संघ केवल वेतन बढ़ाने की मांग करने वाली एजेंसी नहीं है, बल्कि वह औद्योगिक लोकतंत्र (Industrial Democracy) का सच्चा संवाहक और प्रबंधन व श्रम के बीच स्वस्थ संतुलन स्थापित करने वाली अनिवार्य संस्था है।

प्रश्न 25: औद्योगिक विवाद क्या है? स्पष्ट कीजिए (कारण, निवारण एवं भारतीय तंत्र)।

1. अर्थ एवं वैधानिक संकल्पना: औद्योगिक विवाद (Industrial Dispute) उत्पादन व्यवस्था के भीतर पूँजी (नियोजक) और श्रम (कर्मकार) के मध्य उत्पन्न होने वाला वह आर्थिक, सामाजिक या प्रबंधकीय गतिरोध है, जो दोनों पक्षों के असमाधेय मतभेदों के परिणामस्वरूप खुले संघर्ष का रूप ले लेता है। औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 2(k) के अनुसार, यह किसी भी ऐसे विषय पर असहमति है जो नियोजन (रोजगार), अनियोजन (छंटनी/बर्खास्तगी), सेवा की शर्तों अथवा कार्यदशाओं से जुड़ा हो। जब कारखाने के भीतर शांतिपूर्ण सहयोग का स्थान अविश्वास और टकराव ले लेता है, तो उसे औद्योगिक अशांति या विवाद कहा जाता है।

2. भारत में औद्योगिक विवादों के प्रमुख कारण:

• आर्थिक कारण (Economic Causes - लगभग 50-60% विवादों का मूल):

- **मजदूरी एवं महंगाई भत्ता:** उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) में वृद्धि के अनुपात में वास्तविक मजदूरी न बढ़ना विवाद का सबसे पुराना और प्रमुख कारण है।
- **बोनस विवाद:** 'बोनस संदाय अधिनियम, 1965' के तहत न्यूनतम 8.33% से लेकर अधिकतम 20% तक बोनस के वितरण को लेकर कंपनी के लाभ की गणना पर प्रबंधन और यूनियनों के बीच भारी मतभेद होते हैं।

• प्रबंधकीय व संगठनात्मक कारण (Managerial Causes):

- प्रबंधन द्वारा मान्यता प्राप्त ट्रेड यूनियनों से बात करने से इनकार करना तथा मनमाने ढंग से कामगारों की छंटनी, निलंबन या तालाबंदी घोषित करना।
- अत्यधिक कार्यभार थोपना, कार्यस्थल पर सुरक्षा साधनों की उपेक्षा तथा अमानवीय व्यवहार।

• श्रम संघ संबंधी व राजनीतिक कारण:

- कारखानों में कई प्रतिस्पर्धी यूनियनों का होना (Inter-union Rivalry) और बाहरी राजनीतिक दलों का अपने संकीर्ण हितों हेतु श्रमिकों को भड़काना।

3. विवाद निवारण का वैधानिक ढांचा (Dispute Resolution Machinery):

भारतीय औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अंतर्गत विवादों को सुलझाने हेतु त्रिस्तरीय तंत्र की व्यवस्था की गई है:

- **निवारक तंत्र (Preventive Measures):** 100 से अधिक श्रमिकों वाले प्रतिष्ठानों में *कार्य समितियां (Works Committees)* गठित की जाती हैं जो दैनिक मतभेदों को विवाद बनने से रोकती हैं। साथ ही स्पष्ट स्थायी आदेश (Standing Orders) सेवा नियमों को पारदर्शी बनाते हैं।
- **सुलह तंत्र (Conciliation):** सरकार द्वारा नियुक्त 'सुलह अधिकारी' (Conciliation Officer) अथवा 'सुलह बोर्ड' दोनों पक्षों को वार्ता की मेज पर लाकर आपसी समझौते का प्रयास करते हैं। यदि समझौता हो जाता है तो वह विधिक रूप से बाध्यकारी होता है।
- **स्वैच्छिक मध्यस्थता (Arbitration):** दोनों पक्ष मिलकर किसी निष्पक्ष व्यक्ति या पंच को अपना विवाद सौंपते हैं और उसका निर्णय स्वीकार करने का वचन देते हैं।
- **न्यायनिर्णयन (Adjudication - अंतिम बाध्यकारी तंत्र):** जब वार्ताएं पूर्णतः विफल हो जाती हैं, तो सरकार विवाद को न्यायिक निकायों को सौंपती है:
 - **श्रम न्यायालय (Labour Courts):** स्थायी आदेशों, बर्खास्तगी, अवैध हड़ताल आदि से जुड़े मामलों हेतु।
 - **औद्योगिक न्यायाधिकरण (Industrial Tribunals):** मजदूरी, बोनस, कार्य के घंटे और पेंशन जैसे वृहद् नीतिगत मामलों हेतु।
 - **राष्ट्रीय न्यायाधिकरण (National Tribunal):** उन विवादों हेतु जिनका राष्ट्रीय महत्व हो या जो एक से अधिक राज्यों में फैली कंपनियों को प्रभावित करते हों।

प्रश्न 26(क): बाजार संरचना क्या है और बाजार संरचना की विशेषताएँ बताइए?

1. अर्थ एवं सैद्धांतिक संकल्पना: औद्योगिक अर्थशास्त्र और मूल्य सिद्धांत में बाजार संरचना (Market Structure) से अभिप्राय किसी उद्योग या बाजार के उन संगठनात्मक, संरचनात्मक एवं संस्थागत अभिलक्षणों से है जो बाजार में सक्रिय खरीदारों और विक्रेताओं के पारस्परिक संबंधों, उनके व्यवहार, उत्पाद के स्वरूप तथा फर्मों के मूल्य और उत्पादन संबंधी निर्णयों को निर्धारित करते हैं। औद्योगिक संगठन के प्रसिद्ध **संरचना-आचरण-निष्पादन मॉडल (Structure-Conduct-Performance Paradigm - SCP)** के अनुसार, बाजार की संरचना यह तय करती है कि फर्मों आपस में कैसा आचरण (Conduct - मूल्य निर्धारण, विज्ञापन, साठगांठ) करेंगी, जिससे अंततः उद्योग का आर्थिक निष्पादन (लाभप्रदता, दक्षता, नवाचार) तय होता है।

2. बाजार संरचना के प्रमुख निर्धारक तत्व एवं विशेषताएँ:

- **फर्मों (विक्रेताओं) की संख्या एवं आकार वितरण:** यह बाजार संरचना का प्राथमिक पैमाना है।
 - यदि अनगिनत छोटी फर्में हों तो वह **पूर्ण प्रतियोगिता (Perfect Competition)** होती है जहाँ कोई भी फर्म मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकती।
 - यदि केवल एक ही विक्रेता हो तो वह **विशुद्ध एकाधिकार (Monopoly)** कहलाता है।
 - यदि कुछ गिनी-चुनी विशाल फर्में पूरे बाजार पर हावी हों तो वह **अल्पाधिकार (Oligopoly)** कहलाता है (उदा. ऑटोमोबाइल, टेलीकॉम, सीमेंट उद्योग)। अर्थशास्त्री इसे मापने हेतु 'संकेंद्रण अनुपात' (CR_4 , CR_8) तथा हर्शमैन-हर्फ़िडाहल इंडेक्स (HHI) का प्रयोग करते हैं।
 - **क्रेताओं की संख्या एवं प्रकृति:** यदि बाजार में बहुत सारे खरीदार हों तो सामान्य स्थिति रहती है, किंतु यदि किसी उत्पाद का केवल एक ही बड़ा खरीदार हो तो उसे **क्रेताधिकार (Monopsony)** कहते हैं (जैसे सरकार द्वारा युद्धक विमानों की खरीद)।
 - **वस्तु विभेदीकरण की मात्रा (Product Differentiation):** बाजार में बिकने वाली वस्तुएं पूर्णतः समरूप (Homogeneous) हैं (जैसे गेहूं, कच्चा लोहा) अथवा वे ब्रांड, ट्रेडमार्क, पैकेजिंग और डिजाइन के आधार पर एक-दूसरे से भिन्न हैं (जैसे साबुन, दूधपेस्ट, कारें)। विभेदीकरण जितना अधिक होगा, फर्म को अपने उत्पाद का मूल्य तय करने में उतनी ही अधिक एकाधिकार शक्ति प्राप्त होगी।
 - **प्रवेश एवं बहिर्गमन की बाधाएं (Barriers to Entry & Exit):** प्रो. जो एस. बेन (Joe S. Bain) के अनुसार, नई फर्मों के बाजार में आने में जितनी अधिक रुकावटें होंगी, पुरानी फर्मों का बाजार पर प्रभुत्व उतना ही मजबूत रहेगा। ये बाधाएं भारी पूंजी निवेश की अनिवार्यता, जटिल तकनीकी पेटेंट, कच्चे माल के स्रोतों पर नियंत्रण, सरकारी लाइसेंस अथवा भारी पैमाने की बचतों के रूप में हो सकती हैं।
 - **लागत संरचना (Cost Structure):** उद्योग में स्थिर लागत (Fixed Cost) और परिवर्तनशील लागत का अनुपात क्या है। उच्च स्थिर लागत वाले उद्योगों (जैसे एयरलाइंस, दूरसंचार) में न्यूनतम दक्ष पैमाना (Minimum Efficient Scale - MES) बहुत ऊंचा होता है, जिससे वहां प्राकृतिक अल्पाधिकार का जन्म होता है।
 - **बाजार ज्ञान एवं सूचना की पूर्णता:** क्या उपभोक्ताओं और उत्पादकों को बाजार में प्रचलित कीमतों, लागतों और तकनीकों की पूर्ण जानकारी है अथवा सूचना की विषमता (Asymmetric Information) विद्यमान है।
- 3. निष्कर्ष:** बाजार संरचना का सटीक विश्लेषण नीति-निर्माताओं और प्रतिस्पर्धा आयोगों को यह पहचानने में सहायता करता है कि क्या उद्योग में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा बनी हुई है अथवा एकाधिकार द्वारा उपभोक्ताओं और संसाधनों का दोहन किया जा रहा है।

प्रश्न 26(ख): औद्योगिक वृद्धि से आप क्या समझते हैं?

1. अवधारणा एवं परिभाषा: औद्योगिक वृद्धि (Industrial Growth) किसी अर्थव्यवस्था के द्वितीयक अथवा विनिर्माण क्षेत्र के भौतिक उत्पादन, स्थापित क्षमता, मूल्यवर्धन (Value Added) तथा पूंजीगत परिसंपत्तियों में एक निश्चित समयावधि (वार्षिक या त्रैमासिक) के दौरान होने वाली सतत और मात्रात्मक वृद्धि को व्यक्त करती है। यदि औद्योगिक विकास (Industrial Development) एक गुणात्मक और संस्थागत प्रक्रिया है, तो औद्योगिक वृद्धि उसका विशुद्ध मात्रात्मक एवं संख्यात्मक मापक (Quantitative Dimension) है। यह दर्शाती है कि कारखानों से निकलने वाले भौतिक माल और ऊर्जा के उत्पादन की दर में पिछले वर्ष की तुलना में कितने प्रतिशत की सकारात्मक बढ़ोतरी दर्ज की गई है।

2. औद्योगिक वृद्धि के प्रमुख मापक एवं संकेतक:

भारत में औद्योगिक वृद्धि को मापने का प्राथमिक और आधिकारिक उपकरण 'औद्योगिक उत्पादन सूचकांक' (Index of Industrial Production - IIP) है, जिसे राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय (NSO) द्वारा मासिक आधार पर जारी किया जाता है। IIP के अंतर्गत तीन प्रमुख उप-क्षेत्रों का भारांक (Weightage) होता है:

- **विनिर्माण (Manufacturing - भारांक ~77.6%):** कपड़ा, रसायन, मशीनरी, ऑटोमोबाइल आदि का भौतिक उत्पादन।
- **खनन एवं उत्खनन (Mining - भारांक ~14.4%):** कोयला, कच्चा तेल, प्राकृतिक गैस और धात्विक खनिजों का निष्कर्षण।
- **विद्युत (Electricity - भारांक ~8.0%):** थर्मल, हाइड्रो और नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादन।
- **आठ कोर उद्योग (Eight Core Industries):** औद्योगिक वृद्धि की रीढ़ माने जाने वाले 8 बुनियादी उद्योग—कोयला, कच्चा तेल, प्राकृतिक गैस, रिफाइनरी उत्पाद, उर्वरक, इस्पात, सीमेंट और बिजली—जो IIP के कुल भारांक का लगभग 40.27% हिस्सा रखते हैं।

3. औद्योगिक वृद्धि को निर्धारित करने वाले प्रमुख कारक:

- **सकल घरेलू पूंजी निर्माण (GDCF) एवं निवेश दर:** नई मशीनों, उपकरणों और कारखानों के विस्तार हेतु देश में होने वाले निजी व सरकारी पूंजीगत व्यय (Capex) का परिमाण।
 - **प्रभावी समष्टिगत मांग (Macro-economic Demand):** घरेलू उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति में वृद्धि से टिकाऊ उपभोक्ता सामानों (कारों, रेफ्रिजरेटर) की मांग और अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारतीय विनिर्मित उत्पादों के निर्यात की मांग।
 - **कच्चे माल और ऊर्जा की निरंतर आपूर्ति:** कारखानों को बिना किसी व्यवधान के सस्ती बिजली, कोयला और लॉजिस्टिक्स कनेक्टिविटी सुलभ होना।
 - **ब्याज दरें और मौद्रिक नीति:** रिज़र्व बैंक द्वारा सस्ती ब्याज दरों पर ऋण सुलभ कराना जिससे उद्योगों की कार्यशील व सावधि पूंजी की लागत घटे।
- 4. निष्कर्ष:** उच्च और सतत औद्योगिक वृद्धि दर ही किसी विकासशील देश को मध्यम आय के जाल (Middle-income Trap) से बाहर निकालकर एक विकसित औद्योगिक राष्ट्र के रूप में स्थापित कर सकती है।

प्रश्न 27: उद्योग का आर्थिक विकास में क्या योगदान है?

1. **सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य:** आर्थिक विकास के इतिहास में विनिर्माण उद्योग को सदैव 'संवृद्धि का प्राथमिक इंजन' (Engine of Economic Growth) माना गया है। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री आर्थर लुईस के द्वैतवादी मॉडल और निकोलस काल्डोर के संवृद्धि नियमों (Kaldor's Growth Laws) के अनुसार, विनिर्माण क्षेत्र में उत्पादकता वृद्धि की दर संपूर्ण अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर को निर्धारित करती है।

2. प्रमुख बहुआयामी आर्थिक योगदान:

- **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में क्रांतिकारी उछाल:** उद्योग क्षेत्र में पैमाने के बढ़ते प्रतिफल (Increasing Returns to Scale) और उच्च पूंजी सघनता के कारण मूल्यवर्धन कृषि की तुलना में बहुत तेज होता है, जिससे जीडीपी में तीव्र वृद्धि होती है।
- **अतिरिक्त श्रम का उत्पादक अवशोषण:** भारत जैसे घनी आबादी वाले देशों में कृषि में सीमांत उत्पादकता शून्य या नगण्य होती है (छिपी हुई बेरोजगारी)। उद्योग इस अतिरिक्त कार्यबल को उत्पादक रोजगार प्रदान कर ग्रामीण दरिद्रता को मिटाता है।
- **कृषि का तकनीकी संवर्धन:** उद्योग कृषि को रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, ट्रैक्टर, कंबाइन हार्वेस्टर और ट्यूबवेल उपलब्ध कराकर खाद्यान्न उत्पादन को कई गुना बढ़ाता है।
- **विदेशी मुद्रा अर्जन और भुगतान संतुलन:** उच्च मूल्यवर्धित वस्तुओं (इलेक्ट्रॉनिक्स, फार्मा, ऑटोमोबाइल) के निर्यात से व्यापार संतुलन सुदृढ़ होता है और विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ता है।

प्रश्न 28: भारत में औद्योगीकरण की प्रमुख समस्या क्या है?

1. **परिप्रेक्ष्य:** सात दशकों के नियोजित प्रयासों के बावजूद भारत में विनिर्माण का जीडीपी में अंशदान लगभग 16-17% पर ठहरा हुआ है, जो राष्ट्रीय विनिर्माण नीति के 25% के लक्ष्य से बहुत पीछे है।

2. प्रमुख संरचनात्मक समस्याएँ एवं अवरोध:

- **लॉजिस्टिक्स और बुनियादी ढांचे की उच्च लागत:** भारत में लॉजिस्टिक्स लागत सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 13-14% बैठती है (चीन और अमेरिका में यह 8-9% है)। इसके साथ ही औद्योगिक बिजली की दरें प्रतिस्पर्धी देशों की तुलना में काफी ऊँची हैं।
- **आरंभिक स्तर पर ऋण संकट (MSME Credit Gap):** बैंकों द्वारा अत्यधिक संपार्श्विक (Collateral) की मांग और कठोर ऋण शर्तों के कारण छोटे और मझोले उद्यमों को समय पर कार्यशील पूंजी नहीं मिल पाती।
- **R&D और नवाचार पर न्यून व्यय:** भारत अपनी जीडीपी का मात्र 0.65% अनुसंधान पर खर्च करता है (चीन के 2.4% और दक्षिण कोरिया के 4.8% के मुकाबले), जिससे उच्च तकनीक वाले पूंजीगत सामानों के लिए हम विदेशी आयातों पर निर्भर हैं।
- **जटिल अनुपालन, भूमि अधिग्रहण और श्रम गतिशीलता:** भूमि अधिग्रहण की जटिल कानूनी प्रक्रियाएं, पर्यावरण अनापत्तियों में देरी और नियामक लालफीताशाही व्यापार सुगमता (Ease of Doing Business) को बाधित करती हैं।

निष्कर्ष: इन संरचनात्मक बाधाओं को दूर किए बिना 'मेक इन इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' के लक्ष्यों को पूर्ण रूप से हासिल करना संभव नहीं है।

प्रश्न 29: उदारीकरण और निजीकरण से आप क्या समझते हैं?

1. प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि: वर्ष 1991 में भारत जब गंभीर भुगतान संतुलन संकट, उच्च राजकोषीय घाटे तथा विदेशी मुद्रा भंडार की भारी कमी से जूझ रहा था, तब भारत सरकार ने संरचनात्मक सुधारों के तहत 'एलपीजी मॉडल' (LPG - Liberalization, Privatization, Globalization) को अंगीकार किया। राज्य-नियंत्रित, संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था से मुक्त बाजार-उन्मुख प्रणाली की ओर यह ऐतिहासिक संक्रमण मुख्य रूप से उदारीकरण और निजीकरण के दोहरे स्तंभों पर आधारित था।

2. उदारीकरण (Liberalization) का अर्थ एवं आयाम:

उदारीकरण से तात्पर्य आर्थिक व्यवस्था पर लगे अनावश्यक प्रशासनिक नियंत्रणों, नौकरशाही प्रतिबंधों, कोटा, परमिट और लाइसेंस व्यवस्था को शिथिल अथवा समाप्त करने से है। इसका केंद्रीय दर्शन यह है कि संसाधनों का आवंटन राज्य के आदेशों के स्थान पर बाजार की मांग एवं पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों द्वारा होना चाहिए।

- **औद्योगिक क्षेत्र में अविनियमन:** सुरक्षा और पर्यावरण की दृष्टि से संवेदनशील मुट्ठी भर उद्योगों को छोड़कर शेष सभी क्षेत्रों से अनिवार्य औद्योगिक लाइसेंसिंग प्रथा का उन्मूलन किया गया। फर्मों को अपनी उत्पादन क्षमता के विस्तार एवं विविधीकरण की पूर्ण स्वायत्तता दी गई।
- **वित्तीय व विदेशी विनिमय क्षेत्र:** ब्याज दरों का अविनियमन किया गया, निजी बैंकों को प्रवेश की अनुमति मिली तथा विदेशी मुद्रा नियमन अधिनियम (FERA) के दंडात्मक स्वरूप को समाप्त कर उसे सुगम 'विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम' (FEMA) में बदला गया।
- **व्यापार उदारीकरण:** मात्रात्मक आयात प्रतिबंधों (QRs) को समाप्त किया गया तथा चरम सीमा पर पहुंचे सीमा शुल्कों (Customs Tariffs) में भारी कटौती की गई।

3. निजीकरण (Privatization) की अवधारणा एवं रूपरेखा:

निजीकरण वह नीतिगत प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों (PSUs) के परिसंपत्ति स्वामित्व, वित्तीय नियंत्रण एवं दिन-प्रतिदिन के प्रबंधकीय उत्तरदायित्व को राज्य से निजी क्षेत्र को हस्तांतरित किया जाता है। इसका प्राथमिक उद्देश्य सार्वजनिक उपक्रमों में व्याप्त लालफीताशाही, राजनीतिक हस्तक्षेप और वित्तीय घाटे को समाप्त कर व्यावसायिक दक्षता व जवाबदेही स्थापित करना है।

- **सार्वजनिक क्षेत्र का अनारक्षण:** 1956 की औद्योगिक नीति के तहत जो 17 आधारभूत उद्योग केवल सरकार के लिए आरक्षित थे, उनकी संख्या घटाकर केवल परमाणु ऊर्जा और रेलवे परिचालन तक सीमित कर दी गई।
- **विनिवेश (Disinvestment):** सरकार द्वारा सार्वजनिक उपक्रमों के आंशिक शेयरों को खुले शेयर बाजार में जनता या संस्थागत निवेशकों को बेचना ताकि गैर-ऋण पूंजी प्राप्त हो सके।
- **रणनीतिक बिक्री (Strategic Sale):** प्रबंधन नियंत्रण सहित 51% या अधिक हिस्सेदारी किसी निजी बोलीदाता को सौंपना (जैसे एयर इंडिया का टाटा समूह को हस्तांतरण)।

4. निष्कर्ष: उदारीकरण ने जहाँ देश में प्रतिस्पर्धात्मक कारोबारी माहौल तैयार किया, वहीं निजीकरण ने पूंजी की उत्पादकता को बढ़ाया। दोनों ने मिलकर भारतीय अर्थव्यवस्था को गतिशीलता और वैश्विक पहचान प्रदान की।

प्रश्न 30: वैश्वीकरण किसे कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए।

1. अवधारणा एवं विस्तृत परिभाषा: वैश्वीकरण (Globalization) राष्ट्रीय सीमाओं के आर-पार वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, प्रौद्योगिकी, ज्ञान और मानव श्रम के अबाध और निर्बाध प्रवाह के माध्यम से किसी देश की घरेलू अर्थव्यवस्था का संपूर्ण विश्व अर्थव्यवस्था के साथ बहुआयामी एकीकरण की प्रक्रिया है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) के अनुसार, "वैश्वीकरण विश्व भर में वस्तुओं एवं सेवाओं के सीमा-पार लेनदेन की बढ़ती मात्रा व विविधता, अंतरराष्ट्रीय पूंजी प्रवाह तथा प्रौद्योगिकी के व्यापक प्रसार के फलस्वरूप बढ़ती आर्थिक अंतर्निर्भरता है।" यह केवल व्यापारिक विस्तार नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर आर्थिक निर्णय-प्रक्रियाओं का अभिसरण (Convergence) है।

2. वैश्वीकरण के प्रमुख संरचनात्मक घटक:

- **अंतरराष्ट्रीय व्यापार का उदारीकरण:** विश्व व्यापार संगठन (WTO) के नियमों के अनुरूप टैरिफ (आयात शुल्क) दरों में चरणबद्ध कटौती करना और गैर-टैरिफ अवरोधों (कोटा, लाइसेंस) को न्यूनतम करना ताकि वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं (Global Value Chains) का निर्माण हो सके।
- **वित्तीय व पूंजीगत उदारीकरण:** प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) और विदेशी पोर्टफोलियो निवेश (FPI) के नियमों का सरलीकरण। इससे बहुराष्ट्रीय निगम किसी भी देश में संयंत्र स्थापित कर सकते हैं और विदेशी निवेशक घरेलू शेयर व बॉन्ड बाजार में पूंजी लगा सकते हैं।
- **प्रौद्योगिकी और बौद्धिक संपदा का अंतरण:** ट्रिप्स (TRIPS) समझौते के तहत पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमार्क के अंतरराष्ट्रीय संरक्षण के साथ-साथ डिजिटल तकनीक, सॉफ्टवेयर और ऑटोमेशन का विश्व भर में त्वरित फैलाव।
- **श्रम और सेवाओं की गतिशीलता:** यद्यपि श्रम की आवाजाही पर अभी भी विधिक सीमाएं हैं, तथापि तकनीकी विशेषज्ञों, सॉफ्टवेयर पेशेवरों, वित्तीय सलाहकारों और प्रबंधकों की अंतरराष्ट्रीय गतिशीलता में अभूतपूर्व विस्तार हुआ है।

3. भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव एवं मूल्यांकन:

(क) सकारात्मक प्रभाव: भारत सूचना प्रौद्योगिकी (IT), बीपीओ और ज्ञान-आधारित सेवा निर्यात का वैश्विक केंद्र बना। ऑटोमोबाइल और फार्मास्यूटिकल्स में भारतीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों (जैसे टाटा, सन फार्मा) का वैश्विक उभार हुआ। उपभोक्ताओं को प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर गुणवत्तापूर्ण अंतरराष्ट्रीय उत्पाद सुलभ हुए तथा देश का विदेशी मुद्रा भंडार मजबूत हुआ।

(ख) चुनौतियाँ एवं प्रतिकूल प्रभाव: सस्ती विदेशी वस्तुओं (विशेष रूप से चीनी आयातों) से देश के असंगठित एवं पारंपरिक कुटीर उद्योगों को क्षति पहुंची। वैश्विक वित्तीय संकटों (जैसे 2008 की मंदी या आपूर्ति श्रृंखला व्यवधान) का घरेलू अर्थव्यवस्था पर सीधा प्रभाव पड़ने लगा। साथ ही, पूंजी-गहन तकनीकों के आने से संगठित क्षेत्र में 'रोजगार-विहीन संवृद्धि' (Jobless Growth) की प्रवृत्ति देखी गई।

4. निष्कर्ष: वैश्वीकरण ने भारत के लिए असीम विकास के द्वार खोले हैं। आवश्यकता इस बात की है कि घरेलू विनिर्माण क्षेत्र की उत्पादकता बढ़ाकर और सुरक्षात्मक जाल (Social Safety Nets) तैयार कर इसके दुष्प्रभावों से वंचित वर्गों की रक्षा की जाए।

प्रश्न 31: औद्योगिक विकास में आईडीबीआई (IDBI) की क्या भूमिका है?

1. स्थापना, प्रकृति एवं वैधानिक अधिदेश: भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (Industrial Development Bank of India - IDBI) की स्थापना जुलाई 1964 में संसद के एक विशेष अधिनियम के तहत भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की पूर्ण स्वामित्व वाली अनुषंगी के रूप में की गई थी। बाद में, 16 फरवरी 1976 को इसे स्वायत्तता प्रदान करते हुए भारत सरकार के सीधे स्वामित्व वाले एक शीर्ष सार्वजनिक विकास वित्तीय संस्थान (Apex DFI) का दर्जा दिया गया। IDBI की स्थापना का मूल अधिदेश देश में औद्योगिक वित्त प्रदान करने वाली समस्त संस्थाओं के बीच समन्वय स्थापित करना, दीर्घकालिक परियोजना वित्त सुलभ कराना तथा भारत में औद्योगिक संरचना की नींव को मजबूत करना था।

2. औद्योगिक विकास में IDBI की बहुआयामी भूमिकाएँ एवं कार्य:

- **शीर्ष समन्वयक एवं नेतृत्वकर्ता की भूमिका:** IDBI ने देश के समस्त विकास वित्तीय संस्थानों (IFCI, ICICI, राज्य वित्त निगमों - SFCs तथा SIDCs) की नीतियों और कार्यक्रमों का मार्गदर्शन किया। इसने वित्तीय संस्थाओं के मध्य दोहरे वित्तपोषण को रोका और राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुसार औद्योगिक साख के प्रवाह को दिशा दी।
- **प्रत्यक्ष परियोजना वित्तपोषण (Direct Financial Assistance):** देश के पूंजी-गहन और रणनीतिक कोर उद्योगों—जैसे लोहा एवं इस्पात, सीमेंट, उर्वरक, भारी रसायन, बिजली संयंत्र तथा पोत निर्माण—को रुपये तथा विदेशी मुद्रा में 20 से 25 वर्ष तक के दीर्घवधि सावधि ऋण (Term Loans) प्रदान किए। इसके अतिरिक्त, इसने कंपनियों द्वारा जारी अंशों और ऋणपत्रों का बड़े पैमाने पर अभिगोपन (Underwriting) किया तथा सीधे समता पूंजी (Equity) में भागीदारी की।
- **पुनर्वित्तपोषण की धुरी (Refinance Facilities):** वाणिज्यिक बैंकों और राज्य वित्त निगमों द्वारा औद्योगिक इकाइयों को दिए गए सावधि ऋणों पर पुनर्वित्त सुविधा प्रदान करके संपूर्ण बैंकिंग तंत्र की औद्योगिक साख क्षमता को कई गुना बढ़ाया। इसके तहत 'विपत्र पुनर्भुनाई योजना' (Bills Rediscounting Scheme) चलाकर मशीनरी निर्माताओं और खरीदारों दोनों को तरलता दी गई।
- **संतुलित क्षेत्रीय विकास को प्रोत्साहन:** क्षेत्रीय विषमता मिटाने हेतु IDBI ने औद्योगिक दृष्टि से घोषित पिछड़े जिलों में स्थापित होने वाली इकाइयों के लिए रियायती ब्याज दरें, लंबा अधिस्थगन काल (Moratorium) और कम मार्जिन मनी जैसी विशेष प्रोत्साहन योजनाएं संचालित कीं।
- **संस्थागत संरचना का निर्माण:** IDBI ने देश में नए विशेषीकृत संस्थानों की स्थापना में जनक की भूमिका निभाई; जैसे—लघु उद्योगों हेतु *SIDBI* (1990), निर्यात वित्तपोषण हेतु *EXIM Bank* (1982), तकनीकी परामर्श संगठन (TCOs) तथा साख रेटिंग एजेंसी *CRISIL*।

3. समकालीन परिवर्तन एवं निष्कर्ष:

1990 के दशक के वित्तीय सुधारों और सस्ते रियायती फंडों की समाप्ति के पश्चात, वर्ष 2004 में IDBI का एक पूर्ण अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (IDBI Bank Ltd.) के रूप में रूपांतरण कर दिया गया। रूपांतरण के बावजूद, स्वतंत्र भारत के आरंभिक पांच दशकों में भारी उद्योगों का जो विशाल आधार तैयार हुआ, उसमें IDBI की भूमिका सर्वोपरि और ऐतिहासिक रही है।

प्रश्न 32: सामाजिक सुरक्षा के महत्व को समझाइए।

1. अवधारणात्मक एवं दार्शनिक आधार: सामाजिक सुरक्षा (Social Security) किसी भी कल्याणकारी राज्य और सभ्य समाज की वह अनिवार्य व्यवस्था है जो अपने नागरिकों, विशेषकर कामगार वर्ग को उन आकस्मिक जीवन-जोखिमों और आर्थिक संकटों के विरुद्ध सामूहिक संरक्षण प्रदान करती है जिन पर उनका कोई व्यक्तिगत नियंत्रण नहीं होता। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार, सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जो समाज उचित संगठन के माध्यम से अपने सदस्यों को बीमारी, मातृत्व, औद्योगिक दुर्घटना, बेरोजगारी, व्यावसायिक रोग, वृद्धावस्था और परिवार के मुख्य कमाने वाले की अकाल मृत्यु के कारण आय के रुक जाने या अत्यधिक व्यय होने की स्थिति में प्रदान करता है।

2. सामाजिक सुरक्षा के दो बुनियादी रूप:

- **सामाजिक बीमा (Social Insurance):** इसमें श्रमिक, नियोजक और कभी-कभी राज्य मिलकर एक साझा कोष में नियमित अंशदान करते हैं, जिसके आधार पर संकट आने पर बिना किसी साधन-जांच के अधिकारपूर्वक लाभ दिए जाते हैं (जैसे ESI और EPF योजनाएं)।
- **सामाजिक सहायता (Social Assistance):** इसमें लाभार्थियों से कोई अंशदान नहीं लिया जाता, बल्कि सामान्य कर राजस्व से वृद्धों, विधवाओं, दिव्यांगों और निर्धनों को सीधे वित्तीय व चिकित्सकीय सहायता दी जाती है (जैसे राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम - NSAP)।

3. औद्योगिक एवं समष्टिगत आर्थिक परिप्रेक्ष्य में महत्व:

- **मानव पूंजी का संरक्षण एवं उत्पादकता में वृद्धि:** जब श्रमिक को यह मनोवैज्ञानिक आश्वस्ति होती है कि बीमारी या दुर्घटना की स्थिति में उसका इलाज मुफ्त होगा और परिवार भूखा नहीं मरेगा, तो उसका कार्य-मनोबल बढ़ता है। स्वस्थ और तनावमुक्त श्रमिक की उत्पादकता स्वाभाविक रूप से अधिक होती है।
 - **औद्योगिक शांति एवं स्थिर श्रम शक्ति का निर्माण:** सामाजिक सुरक्षा उपायों के अभाव में श्रमिक असंतोष, हड़तालें और उच्च श्रम आवर्त (Labour Turnover) की समस्याएं जन्म लेती हैं। सुरक्षा योजनाओं से श्रमिकों का कारखाने के प्रति जुड़ाव और निष्ठा प्रगाढ़ होती है, जिससे श्रम-प्रबंध संबंध सौहार्दपूर्ण बनते हैं।
 - **आय विषमता में कमी और गरीबी निवारण:** वृद्धावस्था पेंशन, भविष्य निधि और ग्रेच्युटी सेवानिवृत्ति के उपरांत श्रमिक को दरिद्रता के दलदल में धंसने से रोकते हैं, जिससे समाज में आर्थिक असमानता का विस्तार थमता है।
 - **समग्र मांग का स्थिरीकरण (Counter-cyclical Stabilizer):** आर्थिक मंदी के समय जब रोजगार घटते हैं, तब बेरोजगारी भत्ते और सामाजिक सुरक्षा भुगतान आम जनता की क्रय शक्ति को पूरी तरह समाप्त होने से बचाते हैं, जिससे बाजार में उपभोग मांग का चक्र बना रहता है।
 - **संवैधानिक आदर्शों की पूर्ति:** यह भारतीय संविधान के राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों—विशेषकर अनुच्छेद 41 (काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार) तथा अनुच्छेद 42 (काम की न्यायसंगत दशाएं व मातृत्व सहायता)—का व्यावहारिक क्रियान्वयन है।
- 4. निष्कर्ष:** सामाजिक सुरक्षा कोई अनुत्पादक वित्तीय भार या दान नहीं है, बल्कि यह स्वस्थ, दक्ष और निष्ठावान औद्योगिक श्रम शक्ति के निर्माण में किया गया सबसे महत्वपूर्ण दीर्घकालिक सामाजिक निवेश है।

प्रश्न 33: आर्थिक विकास में उद्योगों की क्या भूमिका है? स्पष्ट कीजिए।

1. सैद्धांतिक पृष्ठभूमि एवं संरचनात्मक परिवर्तन: आर्थिक विकास के इतिहास का गहन विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि कोई भी राष्ट्र औद्योगिक क्षेत्र के सुदृढ़ विकास के बिना उच्च आय वर्ग और समृद्ध अवस्था में नहीं पहुंच सकता। विकास अर्थशास्त्र के प्रणेता डब्ल्यू. आर्थर लुईस, साइमन कुजनेट्स और निकोलस काल्डोर ने स्पष्ट किया है कि आर्थिक विकास अनिवार्यतः एक 'संरचनात्मक रूपांतरण' (Structural Transformation) की मांग करता है, जिसके अंतर्गत देश की कार्यबल शक्ति और पूंजीगत संसाधन कम उत्पादकता वाले प्राथमिक कृषि क्षेत्र से निकलकर उच्च उत्पादकता वाले विनिर्माण उद्योगों की ओर प्रवाहित होते हैं।

2. आर्थिक विकास में उद्योगों की विशिष्ट एवं बहुआयामी भूमिका:

- **राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में तीव्र संवृद्धि:** कृषि की तुलना में विनिर्माण उद्योग में 'पैमाने के बढ़ते प्रतिफल' (Increasing Returns to Scale) और श्रम-विभाजन का स्तर अत्यंत उच्च होता है। आधुनिक संयंत्रों और शक्ति-चालित मशीनों के प्रयोग से प्रति श्रमिक उत्पादन (Value Added per Worker) कई गुना बढ़ जाता है, जिससे सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में तीव्र गति से उछाल आता है।
- **प्रच्छन्न बेरोजगारी का अवशोषण:** भारत जैसे घनी आबादी वाले कृषि-प्रधान देशों में भूमि पर अत्यधिक जनसंख्या दबाव होने के कारण कृषि में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य या नगण्य होती है (छिपी हुई बेरोजगारी)। विनिर्माण उद्योग इस फालतू कार्यबल को उत्पादक रोजगार प्रदान कर ग्रामीण गरीबी को समाप्त करता है।
- **कृषि क्षेत्र का तकनीकी आधुनिकीकरण:** उद्योग कृषि का प्रतिस्पर्धी नहीं बल्कि उसका पूरक है। उद्योग कृषि को रासायनिक खाद, कीटनाशक, कंबाइन हार्वेस्टर, ट्रैक्टर, ड्रिप सिंचाई उपकरण और ट्यूबवेल प्रदान करता है, जिससे खाद्यान्न उत्पादन और कृषि उत्पादकता में क्रांतिकारी वृद्धि होती है। साथ ही कृषि उपज पर आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योग कृषि को व्यापक बाजार देते हैं।
- **पूंजी निर्माण और बचत को प्रोत्साहन:** औद्योगिक उपक्रमों की लाभ अर्जन क्षमता अधिक होती है। उद्योगपतियों और कॉर्पोरेट घरानों द्वारा अर्जित लाभों का एक बड़ा भाग पुनः पूंजीगत संपत्तियों में पुनर्निवेशित (Ploughed back) किया जाता है, जिससे देश में सकल पूंजी निर्माण (Capital Formation) की दर तेज होती है।
- **अग्रवर्ती और पश्चवर्ती सम्बद्धता (Linkage Effects):** प्रो. अल्बर्ट हिर्शमैन के अनुसार, उद्योग अन्य क्षेत्रों में निवेश को स्वतः उत्प्रेरित करते हैं। एक ऑटोमोबाइल उद्योग टायर, ग्लास, स्टील और बैटरी उद्योगों (पश्चवर्ती) को जन्म देता है तथा परिवहन व सर्विस स्टेशनों (अग्रवर्ती) का जाल बिछाता है।
- **भुगतान संतुलन और राष्ट्रीय संप्रभुता:** घरेलू स्तर पर पूंजीगत सामानों के उत्पादन से विदेशी आयातों पर निर्भरता घटती है, मूल्यवर्धित निर्यातों से विदेशी मुद्रा भंडार समृद्ध होता है तथा अत्याधुनिक रक्षा उपकरणों का घरेलू निर्माण कर राष्ट्रीय सुरक्षा सुनिश्चित होती है।

3. निष्कर्ष: संक्षेप में, उद्योग आधुनिक आर्थिक सभ्यता का हृदय है। यह समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तकनीकी अनुशासन, आधुनिक प्रबंधन और नगरीय जीवन-स्तर को स्थापित करने का प्राथमिक संवाहक है।

प्रश्न 34: भारत में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों की व्याख्या कीजिए।

1. प्रस्तावना: औद्योगिकीकरण एक अत्यंत जटिल, दीर्घकालिक और समग्र आर्थिक प्रक्रिया है। किसी देश में औद्योगिकीकरण की गति, दिशा, क्षेत्रीय वितरण और स्वरूप किसी एक कारक से नहीं, बल्कि अनेक आर्थिक, प्राकृतिक, तकनीकी, सामाजिक तथा राजनीतिक कारकों के पारस्परिक सम्मिश्रण से निर्धारित होता है। भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण राष्ट्र में औद्योगिकीकरण की यात्रा इन कारकों के अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावों के बीच विकसित हुई है।

2. औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले प्रमुख निर्धारक कारक:

- **प्राकृतिक संसाधन एवं खनिज संपदा की उपलब्धता:** बुनियादी उद्योगों का विकास खनिजों की उपलब्धता पर सीधा निर्भर करता है। छोटानागपुर पठार (झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल) में कोयला, लौह अयस्क, बॉक्साइट और चूना पत्थर की प्रचुरता के कारण ही वहां भारत के विशाल लोहा-इस्पात और भारी इंजीनियरिंग क्लस्टर विकसित हुए। इसके विपरीत, खनिज-विहीन क्षेत्रों में औद्योगिकीकरण धीमा रहा।
- **पूंजी निर्माण की दर एवं वित्तीय संस्थागत ढांचा:** आधुनिक औद्योगिकीकरण पूंजी-गहन होता है। देश में घरेलू बचत दर (Gross Domestic Savings), बैंकिंग प्रणाली की तरलता, सुदृढ़ कॉर्पोरेट बॉन्ड बाजार और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की आवक औद्योगिकीकरण की गति तय करते हैं। संस्थागत विकास बैंकों (IDBI, ICICI, SFCs) की उपस्थिति ने भारत में दीर्घकालिक परियोजना वित्त सुलभ कराया।
- **मानव पूंजी, तकनीकी कौशल एवं श्रम आपूर्ति:** औद्योगिकीकरण हेतु केवल शारीरिक श्रम पर्याप्त नहीं होता, बल्कि कुशल इंजीनियरों, तकनीकी ऑपरेटर्स, वैज्ञानिकों और प्रबंधकों की आवश्यकता होती है। भारत में IITs, NITs और ITIs के नेटवर्क ने तकनीकी मानव संसाधन दिया, यद्यपि आधुनिक उद्योग 4.0 के दौर में अभी भी कौशल अंतराल (Skill Gap) एक गंभीर चुनौती बना हुआ है।
- **आधारभूत अवसंरचना (Physical Infrastructure):** निर्बाध चौबीसों घंटे औद्योगिक विद्युत आपूर्ति, आधुनिक रेलवे और एक्सप्रेसवे नेटवर्क, गहरे बंदरगाह और सुव्यवस्थित दूरसंचार प्रणाली उत्पादन लागत को सीधे प्रभावित करते हैं। भारत में उच्च लॉजिस्टिक्स लागत (जीडीपी का लगभग 13-14%) औद्योगिकीकरण की राह में एक बड़ा अवरोधक रही है।
- **घरेलू बाजार का आकार और प्रभावी मांग:** भारत की 140 करोड़ से अधिक की विशाल जनसंख्या, तेजी से उभरता मध्यम वर्ग और बढ़ती क्रय शक्ति विनिर्मित उपभोक्ता वस्तुओं (ऑटोमोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स, कपड़ा) के लिए एक सुरक्षित घरेलू मांग उपलब्ध कराती है, जो उद्योगों को विस्तार की प्रेरणा देती है।
- **सरकारी नीतियां, कर संरचना एवं राजनीतिक स्थिरता:** लाइसेंसिंग नीतियां, प्रत्यक्ष कर व जीएसटी (GST), 'मेक इन इंडिया', पीएलआई योजनाएं, भूमि अधिग्रहण कानून तथा श्रम संहिताओं का लचीलापन सीधे तौर पर निवेशकों के विश्वास और कारोबारी सुगमता (Ease of Doing Business) को निर्धारित करते हैं।

3. निष्कर्ष: भारत में तीव्र और सतत औद्योगिकीकरण के लिए अवसंरचनात्मक सुधार, लॉजिस्टिक्स लागत में कमी और अनुसंधान एवं विकास (R&D) में सार्वजनिक-निजी निवेश का विस्तार सबसे महत्वपूर्ण उत्प्रेरक सिद्ध होंगे।

प्रश्न 35: भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु एवं कुटीर उद्योग के योगदान की व्याख्या कीजिए।

1. अवधारणात्मक अंतर एवं परिचय: कुटीर उद्योग (Cottage Industries) वे पारंपरिक उद्यम हैं जो प्रायः कारीगरों द्वारा अपने घरों में पारिवारिक सदस्यों के श्रम से, साधारण औजारों और स्थानीय कच्चे माल के आधार पर संचालित किए जाते हैं (जैसे हथकरघा, खादी, मिट्टी के बर्तन, हस्तशिल्प)। इसके विपरीत, लघु उद्योग (Small-Scale Industries) आधुनिक शक्ति-चालित मशीनरी, वेतनभोगी श्रमिकों और बाहरी बाजार हेतु उत्पादन करते हैं। भारत जैसे श्रम-प्रचुर और पूंजी-अभाव वाले विकासशील देश में ये उद्योग आर्थिक लोकतंत्र और सामाजिक समरसता की रीढ़ हैं।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में इनका विशिष्ट योगदान:

- **न्यूनतम पूंजी पर व्यापक रोजगार सृजन:** लघु और कुटीर उद्योगों की पूंजी-श्रम अनुपात (Capital-Labour Ratio) बहुत कम होता है। भारी उद्योगों में एक रोजगार सृजित करने हेतु जहाँ लाखों-करोड़ों रुपये के पूंजी निवेश की आवश्यकता होती है, वहीं लघु उद्योगों में मात्र कुछ हजार रुपये के निवेश से टिकाऊ आजीविका उत्पन्न हो जाती है। यह भारत की व्यापक बेरोजगारी और मौसमी कृषि संकट के समाधान का अचूक साधन है।
- **संतुलित क्षेत्रीय एवं विकेंद्रीकृत विकास:** भारी उद्योगों का संकेंद्रण महानगरों और खनिज क्षेत्रों तक सीमित रहता है, जिससे क्षेत्रीय विषमता बढ़ती है। लघु एवं कुटीर इकाइयाँ देश के कोने-कोने, दूरदराज के गांवों और कस्बों में स्थापित होकर स्थानीय प्रतिभा व संसाधनों का उपयोग करती हैं। इससे महानगरों की ओर होने वाले अनियंत्रित श्रम पलायन पर प्रभावी रोक लगती है।
- **पारंपरिक कला, संस्कृति एवं हस्तशिल्प का संरक्षण:** बनारसी रेशमी साड़ियाँ, मुरादाबादी पीतल के उत्पाद, कश्मीरी पश्मीना शॉल, जयपुर की ब्लू पॉटरी और भदोही के कालीन विश्व भर में भारत की सांस्कृतिक पहचान हैं। ये उद्योग इन पारंपरिक कलाओं को जीवित रखते हुए देश को भारी विदेशी मुद्रा अर्जित कराते हैं।
- **आय और संपत्ति का न्यायसंगत वितरण:** इन उद्यमों का स्वामित्व किसी बड़े कॉर्पोरेट घराने के हाथ में न होकर लाखों छोटे कारीगरों, दस्तकारों और पहली पीढ़ी के उद्यमियों के पास होता है। इससे आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण रुकता है और धन का प्रवाह समाज के निचले पायदान तक पहुंचता है।
- **महिला सशक्तिकरण एवं समावेशी विकास:** खादी, खाद्य प्रसंस्करण, बीड़ी निर्माण, अगरबत्ती, कढ़ाई और परिधान निर्माण जैसे कुटीर उद्योगों में कार्यबल का 50% से 70% हिस्सा ग्रामीण महिलाओं का है। यह महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाकर समाज में उनकी स्थिति को सुदृढ़ करता है।
- **विदेशी मुद्रा अर्जन:** भारत के कुल हस्तशिल्प, चमड़ा उत्पाद और परिधान निर्यातों का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं विकेंद्रीकृत इकाइयों द्वारा निर्मित होता है, जो देश के चालू खाता घाटे को कम करने में मदद करता है।

3. निष्कर्ष: महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज की अवधारणा में कुटीर उद्योगों को जो केंद्रीय स्थान दिया था, वह आज भी प्रासंगिक है। मुद्रा योजना, कारीगर सम्मान योजनाएं और डिजिटल विपणन (जैसे ONDC) के माध्यम से इन्हें आधुनिक बनाकर भारत की विकास गाथा का मुख्य वाहक बनाया जा सकता है।

प्रश्न 36: औद्योगिक वित्त के प्रमुख साधन कौन-कौन से हैं? स्पष्ट कीजिए।

1. प्रस्तावना एवं वर्गीकरण का आधार: किसी भी औद्योगिक उपक्रम की स्थापना, आधुनिकीकरण, कच्चा माल क्रय करने और विस्तार हेतु पूंजी की आवश्यकता होती है। औद्योगिक अर्थशास्त्र में औद्योगिक वित्त (Industrial Finance) के साधनों को मुख्य रूप से दो आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है: (क) स्वामित्व एवं स्रोत की प्रकृति के आधार पर (आंतरिक एवं बाह्य साधन), तथा (ख) समयावधि के आधार पर (दीर्घकालीन, मध्यमकालीन एवं अल्पकालीन साधन)।

2. आंतरिक साधन (Internal Sources of Finance):

ये वे वित्तीय संसाधन हैं जो कंपनी के अपने आंतरिक परिचालन और संचित कोषों द्वारा जुटाए जाते हैं:

- **प्रतिधारित आय / लाभ का पुनर्निवेश (Ploughing Back of Profits):** कंपनी द्वारा अर्जित शुद्ध लाभ में से शेयरधारकों को लाभांश बांटने के पश्चात जो राशि भविष्य के विस्तार और आपात स्थिति हेतु संचित की जाती है (General Reserves), वह आंतरिक वित्त का सबसे सस्ता और सुरक्षित स्रोत है।
- **मूल्यहास कोष (Depreciation Funds):** पुरानी मशीनों और उपकरणों के प्रतिस्थापन हेतु प्रत्येक वर्ष लाभ-हानि खाते से एक निश्चित राशि अलग रखी जाती है, जिसे नए संयंत्र क्रय करने में अस्थायी रूप से प्रयुक्त किया जा सकता है।

3. बाह्य साधन (External Sources of Finance):

जब आंतरिक संसाधन बड़े औद्योगिक प्रोजेक्ट्स के लिए अपर्याप्त सिद्ध होते हैं, तो बाहरी बाजार से पूंजी जुटाई जाती है:

- **(क) दीर्घकालीन साधन (Long-term Sources - 10 वर्ष से अधिक):**
 - **समता अंश (Equity Shares):** यह कंपनी की स्थायी जोखिम पूंजी (Risk Capital) है। समता अंशधारक कंपनी के वास्तविक स्वामी होते हैं और उन्हें लाभ के अनुपात में लाभांश मिलता है।
 - **पूर्वाधिकार अंश (Preference Shares):** इन अंशधारकों को एक निश्चित दर से लाभांश प्राप्त करने तथा कंपनी के समापन पर पूंजी वापसी का पूर्व-अधिकार प्राप्त होता है।
 - **ऋणपत्र एवं बॉन्ड्स (Debentures & Corporate Bonds):** जनता या संस्थागत निवेशकों से एक निश्चित ब्याज दर पर जुटाया गया दीर्घकालिक ऋण। कंपनी के लाभ हो या हानि, इस पर ब्याज चुकाना अनिवार्य होता है।
 - **विकास वित्तीय संस्थान:** SIDBI, EXIM Bank तथा राष्ट्रीय अवसंरचना वित्तपोषण बैंक (NaBFID) द्वारा भारी आधारभूत परियोजनाओं को दिए जाने वाले सावधि ऋण।
 - **विदेशी स्रोत (FDI एवं ECB):** प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों से जुटाई गई बाह्य वाणिज्यिक उधारी (External Commercial Borrowings)।
- **(ख) मध्यम एवं अल्पकालीन साधन (Medium & Short-term Sources):**
 - **वाणिज्यिक बैंक ऋण:** कार्यशील पूंजी हेतु नकद साख (Cash Credit), बैंक ओवरड्राफ्ट और विनिमय विपत्रों को भुनाना (Bill Discounting)।
 - **सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits):** कंपनियां सीधे आम जनता से 1 से 3 वर्ष हेतु सावधि जमा स्वीकार करती हैं।
 - **व्यापारिक साख (Trade Credit):** कच्चे माल के आपूर्तिकर्ताओं द्वारा विनिर्माताओं को दी जाने वाली 30 से 90 दिन की उधारी।

4. निष्कर्ष: एक कुशल औद्योगिक प्रबंधक को अपने पूंजी ढांचे (Capital Structure) में इक्विटी और डेट (ऋण) का ऐसा इष्टतम सम्मिश्रण तैयार करना चाहिए जिससे पूंजी की लागत न्यूनतम रहे और जोखिम संतुलित बना रहे।

प्रश्न 37: भारत में औद्योगिक विवाद के प्रमुख कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए।

1. अर्थ एवं परिप्रेक्ष्य: औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अनुसार, औद्योगिक विवाद नियोजकों और श्रमिकों के बीच नियोजन, अनियोजन, सेवा शर्तों या कार्यदशाओं को लेकर उत्पन्न होने वाला संस्थागत गतिरोध है। भारत में तीव्र औद्योगिकीकरण और बदलती आर्थिक नीतियों के बीच पूंजी और श्रम के हितों का टकराव निरंतर देखा गया है।

2. भारत में औद्योगिक विवादों के प्रमुख कारण:

- **(क) आर्थिक कारण (लगभग 50-60% विवादों का मूल):**
 - *मजदूरी एवं महंगाई भत्ता:* उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (CPI) में वृद्धि के अनुपात में वास्तविक मजदूरी न बढ़ना विवाद का सबसे प्रमुख कारण है।
 - *बोनस संबंधी असंतोष:* बोनस संदाय अधिनियम के तहत न्यूनतम 8.33% से लेकर 20% तक लाभ-साझाकरण को लेकर कंपनी के बैलेंस शीट के आंकड़ों पर श्रमिकों और प्रबंधन में भारी मतभेद होते हैं।
 - *भत्ते व अन्य वित्तीय लाभ:* आवास भत्ता, चिकित्सा भत्ता और यात्रा भत्ते की मांगों की अनदेखी।
- **(ख) गैर-आर्थिक एवं प्रबंधकीय कारण:**
 - *छंटनी, कामबंदी एवं बर्खास्तगी:* बिना विधिक प्रक्रिया अपनाए सक्रिय श्रमिकों या यूनियन पदाधिकारियों का निष्कासन।
 - *ट्रेड यूनियनों को गैर-मान्यता:* प्रबंधन द्वारा बहुमत वाली प्रतिनिधि यूनियन को मान्यता न देना और समानांतर 'पॉकेट यूनियन' खड़ी करना।
 - *संविदा श्रम का शोषण:* समान कार्य करने के बावजूद स्थायी कर्मचारियों की तुलना में संविदा श्रमिकों को आधा या एक-तिहाई वेतन देना।
 - *खराब कार्यदशाएं:* कारखानों में अत्यधिक कार्यभार, अस्वास्थ्यकर वातावरण और सुरक्षा मानकों का अभाव।
- **(ग) राजनीतिक एवं अंतर-संघीय कारण:** विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध यूनियनों के बीच वर्चस्व की लड़ाई (Inter-union rivalry) के कारण भी कारखानों में काम ठप होता है।

3. औद्योगिक विवादों के बहुआयामी दुष्परिणाम:

- **श्रमिकों पर प्रतिकूल प्रभाव:** लंबी हड़तालों के दौरान वेतन रुकने से कामगार भारी ऋणग्रस्तता में फंस जाते हैं, भुखमरी की नौबत आती है तथा पुलिस दमन या स्थायी नौकरी खोने का जोखिम रहता है।
- **उद्योगपतियों एवं नियोजकों को भारी क्षति:** उत्पादन बंद रहने से अचल लागत (मशीनों का मूल्यहास, ब्याज, किराया) का निरंतर भार बना रहता है, आपूर्ति अनुबंध रद्द हो जाते हैं और कंपनी की बाजार साख गिरती है।
- **राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को आघात:** सकल घरेलू उत्पाद में विनिर्माण उत्पादन का नुकसान होता है, लाखों कार्यदिवसों की हानि (Loss of Man-days) होती है, सरकारी कर राजस्व घटता है और विदेशी निवेशकों का विश्वास डगमगाता है।
- **उपभोक्ताओं एवं समाज पर संकट:** आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति बाधित होने से कालाबाजारी और कृत्रिम मुद्रास्फीति फैलती है तथा कानून-व्यवस्था पर दबाव बढ़ता है।

4. निष्कर्ष: औद्योगिक शांति आर्थिक संवृद्धि की प्राथमिक पूर्व-शर्त है। विवादों के समाधान हेतु स्वैच्छिक मध्यस्थता, कार्य समितियों और सुदृढ़ द्विपक्षीय संवाद को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

प्रश्न 38: भारत में औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपलब्ध विभिन्न सामाजिक सुरक्षा उपायों का वर्णन कीजिए।

1. पृष्ठभूमि एवं संवैधानिक दायित्व: भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक-आर्थिक न्याय तथा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों (अनुच्छेद 41, 42 एवं 43) के तहत राज्य को यह निर्देश दिया गया है कि वह कामगारों को गरिमापूर्ण जीवन, निर्वाह मजदूरी, बीमारी व वृद्धावस्था में लोक सहायता सुनिश्चित करे। इसके क्रियान्वयन हेतु भारत में कई ऐतिहासिक सामाजिक सुरक्षा कानून बनाए गए हैं।

2. भारत में प्रमुख वैधानिक सामाजिक सुरक्षा उपाय:

• कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (ESI Act):

यह संगठित क्षेत्र के गैर-मौसमी कारखानों में ₹21,000 प्रति माह तक वेतन पाने वाले श्रमिकों हेतु एक अग्रणी बहुआयामी सामाजिक बीमा योजना है। इसमें श्रमिक (0.75%) और नियोक्ता (3.25%) के अंशदान से कोष बनता है। इसके तहत श्रमिक एवं उसके आश्रितों को ESI अस्पतालों में संपूर्ण निःशुल्क चिकित्सा, बीमारी के दौरान नकद अवकाश भत्ता, मातृत्व लाभ, तथा कार्यस्थल पर दुर्घटना में अपंगता या मृत्यु होने पर आजीवन मासिक पेंशन प्रदान की जाती है।

• कर्मचारी भविष्य निधि एवं प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 (EPF Act):

20 या अधिक कर्मचारियों वाले प्रतिष्ठानों पर लागू इस योजना के तहत श्रमिक और नियोक्ता दोनों मूल वेतन का 12-12% अंशदान करते हैं। इसके तहत तीन प्रमुख लाभ मिलते हैं: (i) भविष्य निधि (EPF): सेवानिवृत्ति पर ब्याज सहित एकमुश्त संचित राशि, (ii) पेंशन योजना (EPS): 58 वर्ष की आयु के बाद आजीवन मासिक पेंशन, तथा (iii) जमा लिंक्ड बीमा (EDLI): सेवा के दौरान मृत्यु पर आश्रितों को ₹7 लाख तक का जीवन बीमा।

• मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 (संशोधित 2017):

महिला औद्योगिक श्रमिकों को संगठनात्मक मातृत्व संरक्षण प्रदान करता है। इसके तहत प्रथम दो जीवित बच्चों हेतु 26 सप्ताह (लगभग 6.5 माह) का पूर्ण सवेतन मातृत्व अवकाश, ₹3,500 का चिकित्सा बोनस तथा 50 या अधिक कर्मचारियों वाले कारखानों में अनिवार्य क्रेच (शिशुगृह) की सुविधा दी जाती है।

• उपादान संदाय अधिनियम, 1972 (Payment of Gratuity Act):

किसी कारखाने या प्रतिष्ठान में कम से कम 5 वर्ष की निरंतर संतोषजनक सेवा पूर्ण करने के उपरान्त सेवानिवृत्ति, त्यागपत्र या मृत्यु की स्थिति में नियोक्ता द्वारा प्रत्येक पूर्ण वर्ष हेतु 15 दिन के अंतिम आहरित वेतन के आधार पर एकमुश्त उपादान (अधिकतम ₹20 लाख तक) दिया जाता है।

• कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923 (Employees' Compensation Act):

कार्य के दौरान और कार्य से उत्पन्न दुर्घटना के फलस्वरूप श्रमिक की मृत्यु या स्थायी अपंगता होने पर नियोक्ता को निर्धारित विधिक दरों पर अनिवार्य वित्तीय क्षतिपूर्ति देनी होती है।

3. नवीन सुधार: सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020:

सरकार ने असंगठित, संविदा, तथा डिजिटल अर्थव्यवस्था के गीग (Gig) व प्लेटफॉर्म श्रमिकों को भी सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाने हेतु 'सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020' बनाई है, जिसके तहत ई-श्रम पोर्टल पर पंजीकृत कामगारों को दुर्घटना बीमा और पेंशन योजनाओं से जोड़ा जा रहा है।

4. निष्कर्ष: यद्यपि भारत में सामाजिक सुरक्षा का वैधानिक ढांचा मजबूत है, तथापि इसके लाभों को देश के 90% असंगठित कार्यबल तक सार्वभौमिक रूप से पहुंचाना 21वीं सदी की सबसे बड़ी नीतिगत चुनौती है।

प्रश्न 39: सीमेंट उद्योग एवं इंजीनियरिंग वस्तुओं के लिए वर्तमान में चुनौतियों को रेखांकित कीजिए।

1. परिचय: सीमेंट उद्योग और इंजीनियरिंग सामान किसी भी अर्थव्यवस्था के भौतिक अधोसंरचना निर्माण और पूंजीगत संचय के दो आधारभूत स्तंभ हैं। भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सीमेंट उत्पादक है और इंजीनियरिंग वस्तुएं भारत के कुल वस्तुगत निर्यात का सबसे बड़ा हिस्सा (~25%) हैं। इसके बावजूद, वर्तमान वैश्विक और घरेलू परिस्थितियों में दोनों क्षेत्र गंभीर संरचनात्मक और तकनीकी चुनौतियों से जूझ रहे हैं।

2. सीमेंट उद्योग के सम्मुख वर्तमान प्रमुख चुनौतियाँ:

- **ऊर्जा एवं ईंधन की अत्यधिक उच्च लागत:** सीमेंट उत्पादन एक अत्यधिक ऊर्जा-गहन (Energy-intensive) प्रक्रिया है। क्लिंकर पकाने हेतु भारी मात्रा में कोयले और पेट्रोलियम कोक (Petcoke) की आवश्यकता होती है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में आयातित कोयले की कीमतों में भारी उछाल और भू-राजनीतिक संकटों के कारण सीमेंट कारखानों की उत्पादन लागत अत्यधिक बढ़ गई है।
- **लॉजिस्टिक्स, भारी भाड़ा व्यय एवं क्षेत्रीय असंतुलन:** सीमेंट एक भार-क्षयकारी और भारी (Bulky) उत्पाद है, जिसका पदार्थ सूचकांक (MI) उच्च होता है। सीमेंट के कुल खुदरा विक्रय मूल्य का लगभग 20% से 25% भाग केवल रेलवे और सड़क परिवहन भाड़े में व्यय हो जाता है। इसके अतिरिक्त, चूना पत्थर के भंडार मुख्य रूप से मध्य, दक्षिणी और पश्चिमी भारत में संकेंद्रित हैं, जबकि भारी खपत वाले उत्तरी और पूर्वी राज्यों तक सीमेंट भेजने में भारी लॉजिस्टिक्स लागत आती है।
- **डीकार्बोनाइजेशन एवं पर्यावरणीय मानक:** सीमेंट निर्माण प्रक्रिया में चूना पत्थर के कैल्सीनेशन से भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) का उत्सर्जन होता है। विश्व भर में शुद्ध-शून्य (Net Zero) लक्ष्यों और कार्बन टैक्स के बढ़ते दबाव के बीच हरित सीमेंट (Green Cement) तकनीक और अपशिष्ट ताप पुनर्प्राप्ति प्रणाली (WHRS) को अपनाना भारतीय सीमेंट संयंत्रों के लिए अत्यंत पूंजी-खर्चीला सिद्ध हो रहा है।

3. इंजीनियरिंग वस्तुओं के सम्मुख प्रमुख चुनौतियाँ:

- **कच्चे माल (इस्पात एवं अलौह धातुओं) के मूल्यों में अस्थिरता:** इंजीनियरिंग उद्योग बुनियादी कच्चे माल के रूप में इस्पात, एल्युमिनियम और तांबे पर निर्भर है। धातु बाजार में मूल्य उतार-चढ़ाव के कारण निर्माताओं के लाभ का मार्जिन घट जाता है और उनके दीर्घकालिक निर्यात अनुबंध घाटे में चले जाते हैं।
 - **उन्नत अनुसंधान एवं सटीक इंजीनियरिंग (Precision Engineering) का अभाव:** भारत कम मूल्यवर्धित इंजीनियरिंग कलपुर्जों के निर्माण में तो अग्रणी है, किंतु उच्च परिशुद्धता वाली सीएनसी मशीनों, रोबोटिक्स, उन्नत एयरोस्पेस घटकों और सेमीकंडक्टर उपकरणों हेतु आज भी जर्मनी, जापान और अमेरिका पर निर्भर है।
 - **विकसित देशों में संरक्षणवाद एवं कार्बन सीमा कर:** यूरोपीय संघ द्वारा लागू किया जा रहा 'कार्बन बॉर्डर एडजस्टमेंट मैकेनिज्म' (CBAM) भारत के इंजीनियरिंग और धातु निर्यातों पर भारी अतिरिक्त शुल्क का खतरा उत्पन्न कर रहा है।
- 4. निष्कर्ष:** इन चुनौतियों से निपटने हेतु सीमेंट उद्योग को वैकल्पिक ईंधनों (TDF/बायोमास) की ओर मुड़ना होगा तथा इंजीनियरिंग क्षेत्र को R&D में निवेश बढ़ाकर उच्च मूल्यवर्धित उत्पादों का विनिर्माण करना होगा।

प्रश्न 40: इंजीनियरिंग उद्योग की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

1. परिचय एवं रणनीतिक महत्ता: इंजीनियरिंग उद्योग (Engineering Industry) आधुनिक विनिर्माण अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा, रणनीतिक और विविधतापूर्ण खंड है। इसे औद्योगिक तंत्र का 'संयंत्र निर्माता' अथवा '**'उद्योगों की जननी' (Mother of All Industries)** कहा जाता है, क्योंकि यह कृषि, वस्त्र, खनन, रसायन, विद्युत, रक्षा और परिवहन सहित अर्थव्यवस्था के अन्य सभी उत्पादक क्षेत्रों के लिए आवश्यक मशीनरी, संयंत्र, उपकरण और कलपुर्जे उपलब्ध कराता है। भारत के औद्योगिक उत्पादन सूचकांक (IIP) में विनिर्माण के कुल भारांक का एक तिहाई से अधिक हिस्सा प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इंजीनियरिंग क्षेत्र से जुड़ा है।

2. इंजीनियरिंग उद्योग की प्रमुख विशेषताएँ:

- **द्वि-विभाजित संरचना (Dichotomous Structure):** इंजीनियरिंग उद्योग दो स्पष्ट श्रेणियों में विभक्त होता है:
 - **भारी इंजीनियरिंग (Heavy Engineering):** इसमें भारी पूंजीगत सामान बनाए जाते हैं; जैसे—बिजली उत्पादन टर्बाइन, बॉयलर, रेलवे इंजन, भारी क्रेन, खनन और इस्पात मिल मशीनरी (जैसे BHEL, L&T के उत्पाद)। इनमें निर्माण अवधि लंबी और पूंजी निवेश विशाल होता है।
 - **हल्की इंजीनियरिंग (Light Engineering):** इसमें अपेक्षाकृत कम पूंजी और तेज चक्र वाले उत्पाद बनते हैं; जैसे—ऑटोमोबाइल कलपुर्जे, सीएनसी मशीन टूल्स, बेयरिंग, पंप, सिलाई मशीनें, बिजली के पंखे और उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स।
 - **उच्च मूल्यवर्धन (High Value Addition):** यह उद्योग कच्चे माल (जैसे कच्चा पिंग आयरन, स्टील सिल्लियां, प्लास्टिक या तांबा) को जटिल रूपांकन, ढलाई, फोर्जिंग और मशीनिंग प्रक्रियाओं से गुजारकर अत्यंत उच्च मूल्य के तकनीकी उत्पादों में बदल देता है। इसमें मूल्यवर्धन की दर अन्य पारंपरिक उद्योगों से कहीं अधिक होती है।
 - **गहन तकनीकी एवं कुशल मानव संसाधन सघनता:** इस उद्योग की सफलता भौतिक श्रम पर नहीं, बल्कि तकनीकी बुद्धि-बल पर टिकी है। इसके लिए उच्च योग्यता प्राप्त मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, इलेक्ट्रॉनिक्स और डिजाइन इंजीनियरों, ड्राफ्ट्समैन तथा आईटीआई-प्रशिक्षित कुशल खरादियों (Turners/Machinists) की निरंतर आवश्यकता होती है।
 - **मजबूत अंतर-क्षेत्रीय सम्बद्धता (Inter-sectoral Linkages):** प्रो. हिर्शमैन के मॉडल के अनुसार, इसमें सर्वाधिक अग्रगामी और पश्चगामी जुड़ाव होते हैं। यह धातु और खनन क्षेत्र से इनपुट लेता है और निर्माण, रक्षा, ऊर्जा तथा ऑटोमोबाइल उद्योगों को गति प्रदान करता है।
 - **निर्यात टोकरी में सर्वोच्च स्थान:** वर्तमान में भारत के कुल व्यापारिक वस्तु निर्यातों में इंजीनियरिंग सामान (Engineering Goods) 25% से अधिक हिस्सेदारी के साथ सबसे बड़ा एकल निर्यात वर्ग बन चुका है, जो औद्योगिक आत्मनिर्भरता का ठोस प्रमाण है।
- 3. निष्कर्ष:** आधुनिक युग में इंजीनियरिंग उद्योग यांत्रिकी (Mechanical) से रूपांतरित होकर 'मेकट्रॉनिक्स' (Mechatronics), औद्योगिक इंटरनेट ऑफ थिंग्स (IIoT) और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) के सम्मिश्रण की ओर बढ़ रहा है। भारत को वैश्विक विनिर्माण केंद्र बनाने में यह उद्योग अग्रदूत रहेगा।

प्रश्न 41: प्रदूषण नियंत्रण की प्रमुख नीतियों को स्पष्ट कीजिए।

1. प्रस्तावना एवं नीतिगत दर्शन: तीव्र औद्योगिकीकरण से उत्पन्न पर्यावरणीय दुष्परिणामों को नियंत्रित करने हेतु अर्थशास्त्र में दो प्रमुख नीतिगत दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं: (क) *कमांड एंड कंट्रोल (Command and Control - CAC) उपागम*, जो विधिक नियमों और प्रशासनिक प्रतिबंधों पर आधारित होता है, तथा (ख) *बाजार-आधारित आर्थिक उपकरण (Market-Based Instruments - MBIs)*, जो मूल्य संकेतों, करों और सब्सिडी के माध्यम से उत्पादकों को प्रदूषण घटाने के लिए आर्थिक रूप से प्रेरित करते हैं। पिगू के बाह्यता सिद्धांत (Pigouvian Tax on Externalities) के अनुसार, औद्योगिक प्रदूषण की बाह्य सामाजिक लागत का आंतरिक समावेशन (Internalization) ही स्वच्छ उत्पादन का आधार है।

2. भारत में प्रदूषण नियंत्रण की प्रमुख नीतियां एवं विधिक ढांचा:

- पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 एवं मानक निर्धारण:** भोपाल गैस त्रासदी के उपरान्त पारित यह एक समग्र (Umbrella) विधान है। इसके तहत केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (CPCB) और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (SPCBs) विभिन्न उद्योगों (जैसे चीनी, रासायनिक, चमड़ा, थर्मल पावर) के लिए वायु, जल और ध्वनि उत्सर्जन के अधिकतम सहनीय स्तर तय करते हैं। मानकों का उल्लंघन करने पर कारखाने की बिजली-पानी काटना और तालाबंदी का विधिक अधिकार है।
- पर्यावरण प्रभाव आकलन (EIA) नीति:** किसी भी बड़े विनिर्माण संयंत्र, रासायनिक इकाई या खनन परियोजना की स्थापना से पूर्व उसके पर्यावरण, स्थानीय पारिस्थितिकी और मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन और सार्वजनिक सुनवाई (Public Hearing) अनिवार्य है। बिना पर्यावरणीय स्वीकृति (Environmental Clearance) के उद्योग प्रारंभ नहीं किया जा सकता।
- प्रदूषक भुगतान करे सिद्धांत (Polluter Pays Principle):** सर्वोच्च न्यायालय और राष्ट्रीय हरित न्यायाधिकरण (NGT) द्वारा स्थापित इस सिद्धांत के तहत प्रदूषण फैलाने वाली इकाइयों पर सख्त पर्यावरणीय क्षतिपूर्ति उपकर लगाया जाता है, जिसका उपयोग दूषित क्षेत्रों के पुनरुद्धार में होता है।
- शून्य तरल निर्वहन (Zero Liquid Discharge - ZLD) एवं चक्रीय अर्थव्यवस्था:** वस्त्र रंगाई, पेपर मिल और चमड़ा कारखानों हेतु अनिवार्य रूप से एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट (ETP) लगाना आवश्यक किया गया है ताकि अपशिष्ट जल को शत-प्रतिशत उपचारित कर पुनः कारखाने में उपयोग किया जा सके और नदियों में विषाक्त जल का विसर्जन शून्य हो।
- बाजार-आधारित नीतियां: PAT और कार्बन बाजार:** ऊर्जा-गहन उद्योगों (सीमेंट, लोहा-इस्पात, एल्युमिनियम) में ऊर्जा खपत घटाने हेतु 'परफॉर्म, अचीव एंड ट्रेड' (PAT) प्रणाली संचालित है। निर्धारित मानकों से अधिक ऊर्जा बचाने वाली फर्मों को एनर्जी सेविंग सर्टिफिकेट्स (ESCerts) मिलते हैं, जिन्हें वे लक्ष्य पूरा न करने वाली फर्मों को बेच सकती हैं। इसी तर्ज पर राष्ट्रीय कार्बन बाजार का ढांचा तैयार किया गया है।

3. निष्कर्ष: प्रदूषण नियंत्रण का उद्देश्य औद्योगिकीकरण को रोकना नहीं, बल्कि उसे 'हरित औद्योगिकीकरण' (Green Industrialization) में रूपांतरित करना है। इसके लिए स्वच्छ तकनीकों (Clean Technologies) के आयात पर रियायतें और सतत पर्यावरण ऑडिट अत्यंत आवश्यक हैं।

प्रश्न 42: उदारीकरण से आशय समझाइए।

1. अर्थ एवं वैचारिक पृष्ठभूमि: उदारीकरण (Liberalization) वह आर्थिक दर्शन, नीतिगत दृष्टिकोण और सुधार प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी अर्थव्यवस्था में उत्पादन, निवेश, मूल्य-निर्धारण, व्यापार और विदेशी विनिमय पर लगे अनावश्यक राज्य-नियंत्रणों, प्रशासनिक अवरोधों, कोटा, परमिट और लाइसेंसें को समाप्त या अत्यधिक शिथिल किया जाता है। क्लासिकल अर्थशास्त्री एडम स्मिथ के 'अदृश्य हाथ' (Invisible Hand) और लेसेज-फेयर (Laissez-faire) के सिद्धांत के अनुरूप, उदारीकरण यह मानता है कि आर्थिक निर्णयों का संचालन नौकरशाही के आदेशों के स्थान पर बाजार की मांग एवं पूर्ति की स्वतंत्र शक्तियों तथा मूल्य तंत्र (Price Mechanism) द्वारा होना चाहिए।

2. भारत में 1991 के उदारीकरण के प्रमुख क्षेत्र एवं आयाम:

- **औद्योगिक क्षेत्र का उदारीकरण (Industrial Deregulation):** 1991 से पूर्व भारत में नया कारखाना लगाने, उत्पादन क्षमता बढ़ाने, या नए उत्पाद का निर्माण करने हेतु सरकार से अनिवार्य लाइसेंस लेना पड़ता था। उदारीकरण ने सुरक्षा और पर्यावरण से जुड़े मात्र मुट्ठी भर उद्योगों को छोड़कर शेष 80% से अधिक विनिर्माण क्षेत्रों को लाइसेंस प्रथा से मुक्त कर दिया। MRTP अधिनियम के तहत बड़ी फर्मों पर लगी परिसंपत्ति सीमाएं समाप्त की गईं ताकि वे पैमाने की बचतें हासिल कर सकें।
- **वित्तीय क्षेत्र का उदारीकरण (Financial Sector Liberalization):** नरसिंम समिति की सिफारिशों पर बैंकों की ब्याज दरों को बाजार-आधारित बनाया गया, निजी क्षेत्र और विदेशी बैंकों को प्रवेश दिया गया, तथा पूंजी बाजार के नियमन हेतु सेबी (SEBI) को वैधानिक शक्ति दी गई।
- **विदेशी व्यापार का उदारीकरण (Trade Liberalization):** आयात पर से मात्रात्मक प्रतिबंध (कोटा प्रणाली) पूरी तरह समाप्त किए गए और चरम सीमा पर पहुंचे सीमा शुल्कों (Customs Duties) को घटाकर अंतरराष्ट्रीय स्तर के निकट लाया गया। निर्यातकों को कच्चा माल व मशीनरी शुल्क-मुक्त आयात करने की छूट दी गई।
- **विदेशी मुद्रा व निवेश उदारीकरण:** रुपये को चलू खाते पर पूर्ण परिवर्तनीय बनाया गया, पुराने दंडात्मक फेरा (FERA) कानून को फेमा (FEMA) में बदला गया, तथा अधिकांश औद्योगिक क्षेत्रों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के स्वतः मार्ग (Automatic Route) खोले गए।

3. उदारीकरण के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव:

सकारात्मक प्रभाव: औद्योगिक उत्पादन में विविधता आई, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार घटा, विदेशी पूंजी व उन्नत तकनीक का प्रवाह बढ़ा, और उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुएं प्रतिस्पर्धी मूल्यों पर उपलब्ध हुईं।

नकारात्मक प्रभाव / चुनौतियाँ: घरेलू असंरक्षित उद्योगों (विशेषकर छोटे उद्यमों) को विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से कड़ी प्रतिस्पर्धा झेलनी पड़ी, क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ीं, और रोजगार-सृजन की लोच में कमी आई।

4. निष्कर्ष: उदारीकरण का तात्पर्य राज्य की भूमिका को शून्य करना नहीं है, बल्कि राज्य को एक 'नियंत्रक और अवरोधक' से बदलकर एक कुशल 'सुविधादाता और निष्पक्ष नियामक' (Facilitator and Regulator) के रूप में स्थापित करना है।

प्रश्न 43: उदारीकरण में तकनीकी हस्तांतरण को स्पष्ट कीजिए।

1. तकनीकी हस्तांतरण की अवधारणा: तकनीकी हस्तांतरण (Technology Transfer) वह जटिल और गतिशील प्रक्रिया है जिसके माध्यम से उन्नत वैज्ञानिक ज्ञान, अत्याधुनिक विनिर्माण प्रणालियाँ, औद्योगिक डिजाइन, पेटेंट, संयंत्र संचालन कौशल और तकनीकी विशेषज्ञता तकनीकी रूप से अग्रणी विकसित देशों या बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) से विकासशील देशों की स्थानीय फर्मों में स्थानांतरित होते हैं। उत्पादन फलन (Production Function) में तकनीक (\$A\$) वह घटक है जो समान श्रम और पूँजी के उपयोग से उत्पादन की मात्रा और गुणवत्ता को कई गुना बढ़ा देता है ($Y = A \cdot F(K, L)$)।

2. 1991 के उदारीकरण से पूर्व बनाम पश्चात की स्थिति:

1991 से पूर्व के संरक्षणवादी युग में भारत में विदेशी तकनीक के आयात पर कड़े विनियामक प्रतिबंध थे। प्रत्येक तकनीकी समझौते हेतु सरकार की पूर्व-अनुमति लेनी पड़ती थी और रॉयल्टी भुगतान की सीमाएं तय थीं, जिसके कारण भारत अप्रचलित और पुरानी तकनीक (Vintage Capital) के जाल में फँसा रहा। 1991 के उदारीकरण ने इस व्यवस्था को पूरी तरह बदल दिया।

3. उदारीकरण के अंतर्गत तकनीकी हस्तांतरण के प्रमुख माध्यम:

- **प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) द्वारा सीधा हस्तांतरण:** जब बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (जैसे सुजुकी, हुंडई, सैमसंग, एलजी) भारत में अपने पूर्ण स्वामित्व वाले संयंत्र स्थापित करती हैं, तो वे अपनी नवीनतम उत्पादन लाइनें, रोबोटिक वेल्डिंग और गुणवत्ता नियंत्रण तकनीकें सीधे देश में लाती हैं।
- **विदेशी तकनीकी सहयोग (Foreign Technical Collaborations):** उदारीकरण नीति के तहत भारतीय कंपनियों को विदेशी साझेदारों के साथ बिना पूर्व सरकारी अनुमति के सीधे तकनीकी समझौते करने और रॉयल्टी भुगतान करने का स्वतः मार्ग (Automatic Approval) दिया गया। उदाहरणार्थ, हीरो और होंडा का प्रारंभिक समझौता।
- **पूँजीगत सामानों का सुगम आयात:** उच्च तकनीक वाली सीएनसी मशीनों, स्वचालित लूम्स, रासायनिक रिएक्टरों और सॉफ्टवेयर पर आयात शुल्क न्यूनतम होने से भारतीय विनिर्माता विश्वस्तरीय तकनीक सीधे खरीद सके।
- **स्पिलओवर एवं अग्रगामी प्रभाव (Knowledge Spillover):** विदेशी कंपनियों के आगमन से स्थानीय कलपुर्जा आपूर्तिकर्ताओं (Vendors) को भी उनकी गुणवत्ता और सटीक सहिष्णुता (Tolerances) के अनुसार अपनी तकनीक अपग्रेड करनी पड़ी। साथ ही, विदेशी फर्मों में प्रशिक्षित भारतीय इंजीनियरों और कामगारों के अनुभव का लाभ संपूर्ण घरेलू उद्योग को मिला।

4. चुनौतियाँ एवं निष्कर्ष:

उदारीकरण ने तकनीक का प्रवाह तो बढ़ाया, किंतु कई बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ कोर प्रौद्योगिकी (Core IP) अपने पास रखती हैं और केवल असेंबलिंग तकनीक ही देती हैं। अतः भारत को 'तकनीक के आयातकर्ता' से 'तकनीक के निर्माता' बनने हेतु घरेलू अनुसंधान एवं विकास (R&D) में निवेश को अपनी जीडीपी के 0.65% से बढ़ाकर कम से कम 2% करना होगा।

प्रश्न 44: व्यापारिक बैंकों का उद्योगों के विकास में भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

1. प्रस्तावना एवं वित्तीय मध्यस्थता: व्यापारिक (वाणिज्यिक) बैंक किसी भी औद्योगिक अर्थव्यवस्था की वित्तीय धमनियों का कार्य करते हैं। जोसेफ शुम्पीटर के नवाचार सिद्धांत (Schumpeterian Innovation Theory) के अनुसार, बैंक साख (Bank Credit) वह प्राथमिक शक्ति है जो नवप्रवर्तक उद्यमियों को निष्क्रिय पड़े राष्ट्रीय संसाधनों को जुटाकर नए औद्योगिक प्रोजेक्ट्स में लगाने की सामर्थ्य देती है। बैंक समाज में बिखरी हुई छोटी-छोटी बचतों को जमा (Deposits) के रूप में आकर्षित करते हैं और उन्हें उत्पादक औद्योगिक निवेश में रूपांतरित करते हैं।

2. उद्योगों के विकास में व्यापारिक बैंकों की बहुआयामी भूमिका:

- **कार्यशील पूंजी का वित्तपोषण (Working Capital Finance):** यह व्यापारिक बैंकों का सबसे पारंपरिक और महत्वपूर्ण योगदान है। कारखानों के दैनिक परिचालन, कच्चा माल क्रय करने, वेतन व मजदूरी बांटने और बिजली बिल चुकाने हेतु बैंक नकद साख (Cash Credit), ओवरड्राफ्ट तथा विनिमय विपत्रों को भुनाने (Bill Discounting) की सुविधाएं देते हैं। इसके बिना औद्योगिक उत्पादन चक्र एक दिन भी नहीं चल सकता।
- **सावधि ऋण एवं आधुनिकीकरण (Term Lending):** 1990 के दशक के वित्तीय सुधारों और विकास वित्तीय संस्थानों (DFIs) के वाणिज्यिक बैंकों में विलय के पश्चात अब व्यापारिक बैंक मध्यम और दीर्घकालीन सावधि ऋण भी प्रदान करते हैं। यह ऋण नए संयंत्र लगाने, पुरानी मशीनों को बदलने और कारखाने के विस्तार हेतु 5 से 15 वर्ष की अवधि के लिए दिया जाता है।
- **सिंडिकेटेड ऋण (Loan Syndication) एवं मेगा प्रोजेक्ट्स:** जब किसी भारी आधारभूत संरचना परियोजना (जैसे थर्मल पावर प्लांट, एक्सप्रेसवे, रिफाइनरी या स्टील प्लांट) हेतु 5,000 या 10,000 करोड़ रुपये जैसी विशाल पूंजी की आवश्यकता होती है, तो कोई एक बैंक अकेले जोखिम नहीं उठाता। व्यापारिक बैंक एक समूह (Consortium) बनाकर संयुक्त रूप से ऋण जुटाते हैं।
- **गैर-निधि आधारित सुविधाएं (Non-Fund Based Facilities):** अंतरराष्ट्रीय और घरेलू व्यापार के संचालन हेतु बैंक साख पत्र (Letter of Credit - LC) और बैंक गारंटी (Bank Guarantee) जारी करते हैं। यह आपूर्तिकर्ताओं को भुगतान का विश्वास दिलाता है और व्यापारिक लेनदेन को सुगम बनाता है।
- **प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र ऋण (Priority Sector Lending - PSL):** रिज़र्व बैंक के दिशा-निर्देशों के अनुसार, वाणिज्यिक बैंकों को अपने कुल ऋण का एक निश्चित हिस्सा अनिवार्य रूप से सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों (MSMEs) को देना होता है, जिससे छोटे उद्यमियों को सस्ता संस्थागत ऋण सुलभ होता है।

3. चुनौतियाँ एवं निष्कर्ष: यद्यपि बैंकों ने भारत के औद्योगिकीकरण में रीढ़ की भूमिका निभाई है, तथापि बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा ऋण न चुकाने से बैंकों की बैलेंस शीट में बढ़ते एनपीए (NPA) ने साख प्रवाह को कई बार अवरुद्ध किया है। दिवाला संहिता (IBC) और डिजिटल साख मूल्यांकन (Fintech) के माध्यम से पारदर्शी बैंकिंग व्यवस्था ही स्वस्थ औद्योगिक विकास की गारंटी है।

प्रश्न 45: औद्योगिक रुग्णता के सुधार के उपाय बताइए।

1. परिप्रेक्ष्य एवं सुधारात्मक रणनीति: औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness) राष्ट्रीय पूंजी के क्षरण, बेरोजगारी और बैंकों के गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों (NPA) के संकट को जन्म देती है। एक बार जब कोई इकाई रुग्ण हो जाती है, तो उसका उपचार करना अत्यंत खर्चीला और जटिल हो जाता है। अतः आधुनिक औद्योगिक अर्थशास्त्र में रुग्णता के सुधार हेतु तीन-चरणीय रणनीति अपनाई जाती है: (क) आरंभिक पहचान (Prevention), (ख) पुनरुद्धार एवं पुनर्गठन (Rehabilitation), तथा (ग) त्वरित बहिर्गमन एवं परिसमापन (Exit & Liquidation)।

2. औद्योगिक रुग्णता दूर करने के प्रमुख उपाय:

- **आरंभिक चेतावनी प्रणाली (Early Warning System) का सुदृढीकरण:** बैंकों को चाहिए कि वे किसी खाते के एनपीए बनने की प्रतीक्षा न करें, बल्कि 'विशेष उल्लेख खातों' (Special Mention Accounts - SMA 0, 1, 2) की कड़ी निगरानी करें। जैसे ही उत्पादन घटने, इन्वेंटरी अटकने या चेक बाउंस होने के लक्षण दिखें, तत्काल सुधारात्मक कार्रवाई शुरू की जानी चाहिए।
 - **वित्तीय पुनर्गठन एवं ऋण पुनर्संरचना (Financial Restructuring):** अस्थायी नकदी संकट में फंसी व्यवहार्य (Viable) इकाइयों को वित्तीय राहत दी जानी चाहिए:
 - ऋण अदायगी की अवधि को बढ़ाना और ब्याज दरों में रियायत देना।
 - अदायगी योग्य न बचे ब्याज के एक हिस्से को कंपनी के समता अंशों (Equity) में रूपांतरित करना।
 - आवश्यकता पड़ने पर रियायती शर्तों पर अतिरिक्त कार्यशील पूंजी (Soft Loan) उपलब्ध कराना।
 - **प्रबंधकीय पुनर्गठन एवं व्यावसायिकता:** रुग्णता के अधिकांश मामलों में अक्षम, पारिवारिक या भ्रष्ट प्रबंधन जिम्मेदार होता है। अतः सुधार हेतु पुराने प्रबंधन को हटाकर पेशेवर निदेशकों, कुशल वित्तीय नियंत्रकों और तकनीकी विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
 - **तकनीकी उन्नयन एवं आधुनिकीकरण:** पुरानी और अत्यधिक ऊर्जा खपत वाली मशीनों को हटाकर आधुनिक, ऊर्जा-कुशल और स्वचालित संयंत्र लगाए जाएं ताकि प्रति इकाई लागत घटे और उत्पाद बाजार में प्रतिस्पर्धी बन सके।
 - **दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (IBC, 2016) का प्रभावी क्रियान्वयन:** पूर्ववर्ती BIFR व्यवस्था अत्यंत धीमी और निष्प्रभावी थी। वर्तमान में IBC के तहत राष्ट्रीय कंपनी विधि न्यायाधिकरण (NCLT) में एक समयबद्ध समाधान प्रक्रिया (CIRP - 180 से 330 दिन) चलाई जाती है। यदि कंपनी को नए खरीदार या निवेशक द्वारा पुनर्जीवित किया जा सकता है तो किया जाता है, अन्यथा उसकी परिसंपत्तियों को समय रहते बेचकर (Liquidation) पूंजी को अन्यत्र उत्पादक कार्यों में मुक्त किया जाता है।
- 3. निष्कर्ष:** औद्योगिक रुग्णता का सफल सुधार इस बात पर निर्भर करता है कि बीमारी को कितना जल्दी पहचाना गया है। 'समय पर उपचार ही जीवन रक्षा है'—यह सिद्धांत औद्योगिक उपक्रमों पर पूर्णतः लागू होता है।

प्रश्न 46: श्रम समस्या के कारण एवं निवारण के उपाय बताइए तथा श्रम संघ से आप क्या समझते हैं?

1. श्रम समस्या के प्रमुख कारण: औद्योगिक समाज में श्रम समस्या (Labour Problems) पूंजी और श्रम के असमान संबंधों से उत्पन्न होती है। इसके मुख्य कारणों में शामिल हैं: (i) *असंतोषजनक पारिश्रमिक*: बढ़ती महंगाई के अनुपात में वास्तविक मजदूरी का न बढ़ना और न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने में कठिनाई, (ii) *असुरक्षित एवं अमानवीय कार्यदशाएँ*: कारखानों में वेंटिलेशन, प्रकाश, सुरक्षा उपकरणों और स्वच्छता का अभाव तथा दुर्घटनाओं का जोखिम, (iii) *संविदा एवं ठेकेदारी प्रथा*: समान कार्य हेतु संविदा श्रमिकों को स्थायी कर्मियों से आधा वेतन और नौकरी की पूर्ण अनिश्चितता, (iv) *सामाजिक सुरक्षा का अभाव*: असंगठित क्षेत्र में पेंशन, मातृत्व लाभ व स्वास्थ्य बीमा का न होना, तथा (v) *प्रबंधकीय निरंकुशता*: श्रमिकों की शिकायतों की उपेक्षा और यूनियन कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न।

2. श्रम समस्याओं के निवारण के प्रमुख उपाय:

- **निष्पक्ष व निर्वाह मजदूरी की गारंटी**: सभी कामगारों हेतु जीवन-लागत सूचकांक से जुड़ा वैधानिक राष्ट्रीय न्यूनतम वेतन (National Minimum Floor Wage) सुनिश्चित करना।
- **कार्यस्थल सुरक्षा मानकों का कड़ाई से प्रवर्तन**: कारखाना निरीक्षकों द्वारा नियमित निरीक्षण और सुरक्षा ऑडिट का अनिवार्य पालन।
- **सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा**: असंगठित व गीग श्रमिकों को ई-श्रम पोर्टल के माध्यम से स्वास्थ्य बीमा, दुर्घटना बीमा और भविष्य निधि से जोड़ना।
- **प्रबंधन में श्रमिकों की सहभागिता (Workers' Participation)**: निर्णय प्रक्रिया में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को शामिल कर अविश्वास की खाई को पाटना।

3. श्रम संघ (Trade Union) से आशय:

श्रम संघ कामगारों का एक वैधानिक, लोकतांत्रिक और स्थायी संगठन है जो अपने सदस्यों के सामाजिक, आर्थिक और सेवा संबंधी हितों की रक्षा एवं संवर्धन हेतु गठित किया जाता है। भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम, 1926 के अंतर्गत 7 या अधिक कामगार मिलकर एक पंजीकृत ट्रेड यूनियन बना सकते हैं।

- **सामूहिक सौदेबाजी का मंच**: व्यक्तिगत रूप से कमजोर श्रमिक संगठित शक्ति के माध्यम से प्रबंधन से मजदूरी, बोनस और सेवा शर्तों पर अनुकूल समझौता करते हैं।
- **औद्योगिक लोकतंत्र का संवाहक**: यह कारखाने के भीतर तानाशाही को रोककर विधिक अधिकारों का संरक्षण करता है और श्रम विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का मार्ग प्रशस्त करता है।

4. निष्कर्ष: एक उत्तरदायी श्रम संघ केवल अधिकारों की मांग नहीं करता, बल्कि कार्यस्थल पर अनुशासन और उत्पादकता बढ़ाकर देश के समग्र औद्योगिक विकास में सहभागी बनता है।

प्रश्न 47: औद्योगिक विवाद के कारणों को स्पष्ट करते हुए उसके रोकने के उपाय बताइए।

1. **परिचय एवं विवाद की प्रकृति:** औद्योगिक विवाद नियोजकों और श्रमिकों के बीच हितों के स्वाभाविक टकराव की परिणति है। यह न केवल कारखाने के उत्पादन को ठप करता है, बल्कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, श्रमिकों की आजीविका और सामाजिक शांति को भी भारी आघात पहुँचाता है। औद्योगिक विवाद निवारण का सर्वोत्तम सिद्धांत यह है कि "इलाज से परहेज बेहतर है" (Prevention is better than cure)।

2. भारत में औद्योगिक विवाद के प्रमुख मूल कारण:

- **आर्थिक कारण (लगभग 50-60% विवाद):** मुद्रास्फीति के कारण घटती वास्तविक मजदूरी, महंगाई भत्ते (DA) की दरों में असमानता, लाभ के आधार पर वार्षिक बोनस (Bonus) के बंटवारे पर मतभेद, तथा अन्य भत्तों की उपेक्षा।
- **प्रबंधकीय व संगठनात्मक कारण:** ट्रेड यूनियनों को औपचारिक मान्यता देने से प्रबंधन का इनकार, पक्षपातपूर्ण पदोन्नति व स्थानांतरण, मनमाने ढंग से श्रमिकों की छंटनी (Retrenchment) या निलंबन, तथा द्विपक्षीय संवाद का अभाव।
- **संविदाकरण की होड़:** लागत कम करने हेतु स्थायी पदों पर ठेके के मजदूरों से काम लेना, जिससे कामगारों में घोर असुरक्षा की भावना पैदा होती है।
- **राजनीतिक व अंतर-संघीय प्रतिद्वंद्विता:** एक ही कारखाने में विभिन्न राजनीतिक दलों से संबद्ध कई यूनियनों का होना और आपसी वर्चस्व की लड़ाई।

3. औद्योगिक विवादों को रोकने के प्रमुख निवारक उपाय (Preventive Measures):

- **कार्य समितियों (Works Committees) का सक्रिय संचालन:** औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 3 के अनुसार, 100 या अधिक श्रमिकों वाले प्रत्येक कारखाने में प्रबंधन और श्रमिकों के समान प्रतिनिधित्व वाली कार्य समिति गठित करना अनिवार्य है। यह समिति दैनिक शिकायतों और मतभेदों को विवाद बनने से पहले ही सुलझा लेती है।
- **द्विपक्षीय स्थायी आदेश (Certified Standing Orders):** रोजगार की शर्तों, कार्य के घंटों, पाली (Shifts) के संचालन, अवकाश नियमों, अनुशासनहीनता की परिभाषा तथा जांच प्रक्रिया के स्पष्ट व पारदर्शी नियम बनाना और उनका कड़ाई से पालन करना ताकि प्रबंधन मनमानी न कर सके।
- **सुदृढ़ शिकायत निवारण तंत्र (Grievance Redressal Machinery):** कारखाने में प्रत्येक श्रमिक की व्यक्तिगत शिकायतों (जैसे वेतन कटौती, अवकाश अस्वीकृति) की निष्पक्ष, गोपनीय और समयबद्ध सुनवाई हेतु औपचारिक शिकायत प्रकोष्ठ स्थापित करना।
- **सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining) का संस्थागत विकास:** प्रबंधन को चाहिए कि वह बहुमत प्राप्त वास्तविक प्रतिनिधि यूनियन को बिना शर्त मान्यता दे और गोपनीय सौदेबाजी के स्थान पर मेज पर बैठकर दीर्घकालिक वेतन समझौते (Wage Pacts) करे।
- **श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति:** 500 या अधिक श्रमिकों वाले कारखानों में स्वतंत्र श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त किए जाएं जो श्रमिकों के कल्याण की निगरानी करें और प्रबंधन व कामगारों के बीच विश्वास का पुल बनें।

4. **निष्कर्ष:** पारस्परिक अविश्वास और टकराव के स्थान पर सहकारिता और औद्योगिक लोकतंत्र की भावना विकसित करके ही विवादों की रोकथाम संभव है।

प्रश्न 48: सामाजिक सुरक्षा के उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।

1. अवधारणात्मक सार: सामाजिक सुरक्षा (Social Security) सभ्य समाज द्वारा अपने कामगारों को आर्थिक आघातों और आकस्मिक संकटों के विरुद्ध दिया जाने वाला सामूहिक सुरक्षा कवच है। प्रसिद्ध ब्रिटिश समाजशास्त्री और अर्थशास्त्री सर विलियम बेवरिज (William Beveridge) ने अपनी ऐतिहासिक रिपोर्ट में सामाजिक सुरक्षा को मानव जाति के पाँच विशाल दैत्यों—*अभाव (Want)*, *बीमारी (Disease)*, *अज्ञानता (Ignorance)*, *गंदगी (Squalor)* और *बेकारी (Idleness)*—के उन्मूलन का सबसे शक्तिशाली अस्त्र बताया था। आधुनिक औद्योगिक समाज में यह कामगारों की मानवीय गरिमा और जीवन-रक्षा की विधिक गारंटी है।

2. सामाजिक सुरक्षा के प्रमुख मूलभूत उद्देश्य:

- **क्षतिपूर्ति का उद्देश्य (Compensation):** कार्यस्थल पर होने वाली औद्योगिक दुर्घटनाओं, विषैले रसायनों से उत्पन्न व्यावसायिक रोगों, शारीरिक विकलांगता अथवा कार्य के दौरान मृत्यु होने की स्थिति में श्रमिक अथवा उसके आश्रित परिवार को अनिवार्य वित्तीय मुआवजा प्रदान करना। यह उद्देश्य 'कर्मचारी प्रतिकर अधिनियम, 1923' द्वारा पूरा होता है।
- **पुनर्स्थापन एवं स्वास्थ्य संरक्षण (Restoration):** बीमारी या दुर्घटना के कारण जब श्रमिक की शारीरिक कार्यक्षमता क्षीण हो जाती है, तो उसे निःशुल्क व उच्चस्तरीय चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, दवाइयाँ और कृत्रिम अंग उपलब्ध कराकर उसकी कार्यक्षमता को पुनः सामान्य करना ताकि वह पुनः उत्पादक कार्यबल का हिस्सा बन सके। यह उद्देश्य ESI अस्पतालों के माध्यम से हासिल किया जाता है।
- **रोकथाम एवं बचाव (Prevention):** व्यावसायिक स्वास्थ्य खतरों का पूर्व-मूल्यांकन करना, कार्यस्थल पर सुरक्षा मानकों का क्रियान्वयन करना तथा श्रमिकों में स्वास्थ्य जागरूकता फैलाकर दुर्घटनाओं और बीमारियों की दर को न्यूनतम करना।
- **आय की निरंतरता की गारंटी (Income Security):** जीवन के उन कठिन चरणों में जब श्रमिक स्वयं काम करने में असमर्थ हो जाता है—जैसे वृद्धावस्था, प्रसूति (मातृत्व), गंभीर बीमारी या आकस्मिक छंटनी—उस समय पेंशन, मातृत्व लाभ अथवा निर्वाह भत्ते के माध्यम से उसकी बुनियादी क्रय शक्ति को बनाए रखना ताकि परिवार भुखमरी का शिकार न हो।
- **सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की स्थापना:** श्रमिक को किसी संकट के समय नियोक्ता की दया या निजी दान पर निर्भर होने के अपमान से बचाकर, उसे सामाजिक सुरक्षा को एक वैधानिक नागरिक अधिकार के रूप में उपलब्ध कराना।
- **औद्योगिक शांति और उत्पादकता संवर्धन:** सुरक्षित और तनावमुक्त श्रमिक कारखाने में अधिक निष्ठा, एकाग्रता और ऊर्जा से कार्य करता है, जिससे राष्ट्र की कुल औद्योगिक उत्पादकता में वृद्धि होती है।

3. निष्कर्ष: सामाजिक सुरक्षा का अंतिम लक्ष्य केवल आर्थिक राहत देना नहीं है, बल्कि एक ऐसे समतामूलक और कल्याणकारी समाज का निर्माण करना है जहाँ कोई भी उत्पादक कामगार आकस्मिक आपदाओं के कारण दरिद्रता के गर्त में न समाए।

प्रश्न 49: भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

1. ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य एवं संरचनात्मक बदलाव: स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 1956 की औद्योगिक नीति के अंतर्गत भारत ने समाजवादी समाज की स्थापना हेतु सार्वजनिक क्षेत्र को 'कमांडिंग हाइट्स' पर रखा था, जबकि निजी क्षेत्र को कड़े लाइसेंसिंग, एमआरटीपी और मूल्य नियंत्रणों के दायरे में सीमित रखा गया था। परंतु सार्वजनिक उपक्रमों में अक्षमता और घाटे के बढ़ने के बाद, **1991 के आर्थिक सुधारों (LPG)** ने आर्थिक दर्शन को पूरी तरह उलट दिया। आज निजी क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था के अग्रणी चालक (Prime Mover of Growth) और राष्ट्रीय संपत्ति सृजन के मुख्य केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है।

2. भारतीय अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की बहुआयामी भूमिका:

- **सकल घरेलू उत्पाद (GDP) और विनिर्माण में विशाल अंशदान:** देश के कुल राष्ट्रीय उत्पादन और विनिर्माण मूल्यवर्धन का 80% से अधिक हिस्सा आज निजी क्षेत्र द्वारा उत्पादित होता है। भारी धातु, ऑटोमोबाइल, सीमेंट, कपड़ा, उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स और फार्मास्यूटिकल्स जैसे कोर क्षेत्रों में निजी कंपनियों का पूर्ण वर्चस्व है।
- **रोजगार का मुख्य संवाहक:** कृषि क्षेत्र के पश्चात देश के गैर-कृषि और संगठित कार्यबल का 90% से अधिक हिस्सा निजी क्षेत्र (कॉर्पोरेट घरानों, मध्यम उद्योगों, सूक्ष्म उपक्रमों और सेवा प्रदाताओं) द्वारा नियोजित है। संगठित सरकारी क्षेत्र में रोजगार सीमित होने के दौर में निजी क्षेत्र ही युवाओं को आजीविका देने का एकमात्र साधन है।
- **पूंजी निर्माण एवं प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI):** देश में होने वाले कुल सकल पूंजी निर्माण (GDCF) का सबसे बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्र के पूंजीगत व्यय (Capex) से आता है। साथ ही, भारत में आने वाले अरबों डॉलर के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने में निजी क्षेत्र के संयुक्त उपक्रम सबसे आगे हैं।
- **नवाचार, R&D एवं तकनीकी नेतृत्व:** सूचना प्रौद्योगिकी (IT - टीसीएस, इन्फोसिस), दूरसंचार, अंतरिक्ष प्रौद्योगिकी (Space-tech), रिन्यूएबल एनर्जी और इलेक्ट्रिक वाहनों (EV) में अभूतपूर्व नवाचार निजी उद्यमशीलता की देन है। भारत का विश्व विख्यात 'स्टार्टअप और यूनिकॉर्न इकोसिस्टम' पूर्णतः निजी क्षेत्र की गतिशीलता पर टिका है।
- **अवसंरचना विकास में पीपीपी (PPP) भागीदारी:** एक्सप्रेसवे, हवाई अड्डों, बंदरगाहों, मेट्रो रेल और ग्रीन एनर्जी पाकों के निर्माण में सार्वजनिक-निजी भागीदारी (Public-Private Partnership) मॉडल ने बुनियादी ढांचे का कार्याकल्प कर दिया है।
- **उपभोक्ता संप्रभुता एवं गुणवत्ता:** एकाधिकार समाप्त होने से निजी क्षेत्र की स्वस्थ प्रतिस्पर्धा ने आम भारतीय उपभोक्ताओं को विश्वस्तरीय वस्तुएं, उत्कृष्ट ग्राहक सेवा और प्रतिस्पर्धी कीमतें सुलभ कराई हैं।

3. निष्कर्ष: सरकार की भूमिका अब व्यापार करने की नहीं, बल्कि एक निष्पक्ष विनियामक (जैसे CCI, SEBI, TRAI) बनकर निजी क्षेत्र की प्रतिस्पर्धात्मक ऊर्जा को राष्ट्र निर्माण और जनहित की दिशा में मोड़ने की है।

प्रश्न 50: विनिवेश (Disinvestment) से आप क्या समझते हैं?

1. अर्थ एवं सैद्धांतिक अवधारणा: विनिवेश (Disinvestment) निवेश की ठीक विपरीत प्रक्रिया है। व्यापक आर्थिक परिप्रेक्ष्य में, विनिवेश वह नीतिगत वित्तीय प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के केंद्रीय या राज्य उपक्रमों (Central Public Sector Enterprises - CPSEs) में अपनी अंशपूंजी (इक्विटी शेयर) या परिसंपत्तियों को खुले वित्तीय बाजार में आम जनता, संस्थागत निवेशकों (LIC, म्यूचुअल फंड) अथवा निजी कंपनियों को बेचकर अपनी स्वामित्व हिस्सेदारी कम करती है। भारत में विनिवेश की औपचारिक शुरुआत 1991 की नवीन औद्योगिक नीति के साथ हुई। वर्तमान में इसका संचालन केंद्रीय वित्त मंत्रालय के अधीन 'निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग' (DIPAM) द्वारा किया जाता है।

2. विनिवेश के मुख्य प्रकार एवं विधियाँ:

- **(क) अल्पसंख्यक विनिवेश (Minority Disinvestment):** इसमें सरकार सार्वजनिक उपक्रम में 51% या उससे अधिक की बहुमत हिस्सेदारी और प्रबंधकीय नियंत्रण अपने पास सुरक्षित रखती है, तथा केवल 10% से 25% तक के सीमित शेयर शेयर बाजार में इनिशियल पब्लिक ऑफरिंग (IPO), ऑफर फॉर सेल (OFS) अथवा भारत-22 ईटीएफ (ETF) के माध्यम से बेचती है (उदा. LIC का IPO, IRCTC का विनिवेश)।
- **(ख) रणनीतिक विनिवेश (Strategic Disinvestment):** इसमें सरकार सार्वजनिक उपक्रम में अपनी 50% से अधिक की हिस्सेदारी के साथ-साथ कंपनी का प्रबंधकीय नियंत्रण (Management Control) भी किसी निजी रणनीतिक साझेदार को हस्तांतरित कर देती है (उदा. भारत पेट्रोलियम, एयर इंडिया का टाटा समूह को हस्तांतरण, हिंदुस्तान जिंक)।
- **(ग) पूर्ण निजीकरण अथवा परिसमापन (Privatization / Liquidation):** अत्यधिक घाटे में चल रहे और पुनरुद्धार के अयोग्य उपक्रमों की 100% परिसंपत्तियों को बेचकर उन्हें बंद कर देना।

3. विनिवेश के प्रमुख आर्थिक उद्देश्य:

- **राजकोषीय घाटे का प्रबंधन:** सरकार को बजटीय घाटे को पाटने और गैर-ऋण पूंजीगत प्राप्तियां (Non-debt Capital Receipts) जुटाने का महत्वपूर्ण साधन उपलब्ध कराना।
- **अवसंरचना और सामाजिक विकास हेतु वित्त:** सार्वजनिक उपक्रमों से जुटाई गई राशि को राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन (रेलवे, हाईवे, अस्पताल, स्कूल) के निर्माण में पुनर्निवेशित करना।
- **प्रबंधकीय दक्षता और कॉर्पोरेट प्रशासन:** निजी पूंजी और शेयर बाजार में सूचीबद्ध होने से पीएसयू में व्यावसायिकता, पारदर्शिता और वित्तीय अनुशासन आता है।
- **सरकारी कोषों की बर्बादी पर रोक:** घाटे में चल रहे बीमार पीएसयू को जिंदा रखने हेतु जनता के करों का धन बर्बाद होने से बचाना।

4. निष्कर्ष: सरकार का स्पष्ट विजन है कि "सरकार का काम व्यापार करना नहीं है।" रणनीतिक क्षेत्रों (रक्षा, ऊर्जा) में सीमित सरकारी उपस्थिति रखते हुए गैर-रणनीतिक क्षेत्रों से विनिवेश करना आर्थिक दक्षता का परिचायक है।

प्रश्न 51: औद्योगिक रुग्णता के क्या लक्षण हैं?

1. अवधारणा एवं क्रमिक प्रक्रिया: औद्योगिक रुग्णता (Industrial Sickness) कोई एकाएक या रातों-रात घटित होने वाली घटना नहीं है। यह एक धीमी, संचयी और क्रमिक क्षरण (Gradual Process) की स्थिति है। किसी कारखाने के पूरी तरह दिवालिया होने या बंद होने से कई महीने या वर्ष पूर्व उसके वित्तीय स्वास्थ्य, उत्पादन व्यवस्था और प्रशासनिक आचरण में स्पष्ट विसंगतियाँ और चेतावनी संकेत (Early Warning Signals) प्रकट होने लगते हैं। औद्योगिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, रुग्णता तीन चरणों से गुजरती है: (i) आरंभिक अस्वस्थता (Incipient Sickness), (ii) गंभीर बीमारी (Sickness), तथा (iii) असाध्य रुग्णता (Chronic Breakdown)।

2. औद्योगिक रुग्णता के प्रमुख लक्षण एवं प्रकटीकरण:

• (क) गंभीर वित्तीय लक्षण (Financial Symptoms):

- **परिचालन लाभ में सतत गिरावट:** फर्म का ग्राँस प्रॉफिट और नेट प्रॉफिट मार्जिन लगातार घटता जाता है और अंततः शुद्ध हानि (Net Losses) में बदल जाता है।
- **तरलता का अभाव एवं चालू अनुपात का गिरना:** कंपनी का चालू अनुपात (Current Ratio) 1 से नीचे गिर जाता है, जिससे वह अपने दैनिक भुगतानों में चूक करने लगती है।
- **ऋण एवं ब्याज अदायगी में निरंतर डिफॉल्ट:** बैंकों और वित्तीय संस्थानों की किस्तों और ब्याज का समय पर भुगतान न होना तथा खाते का 'एनपीए' (NPA) श्रेणी में फिसल जाना।
- **पूँजी का क्षरण:** संचित हानियों का कंपनी की कुल निवल संपत्ति (Net Worth) के बराबर या उससे अधिक हो जाना।

• (ख) उत्पादन एवं परिचालन संबंधी लक्षण (Operational Symptoms):

- **स्थापित क्षमता का न्यून उपयोग (Low Capacity Utilization):** संयंत्र की कुल क्षमता का केवल 30-40% उपयोग हो पाना, जिससे स्थिर लागत का प्रति इकाई भार बहुत बढ़ जाता है।
- **इन्वेंटरी का असामयिक जमावड़ा:** तैयार माल की बाजार में मांग न होने के कारण गोदामों में अनबिका माल अटकना तथा कच्चे माल की कमी से उत्पादन लाइन बार-बार रुकना।
- **मशीनों का अप्रचलन एवं बार-बार खराबी:** संयंत्र के रखरखाव पर असामान्य व्यय और टूटने-फूटने (Breakdowns) की घटनाएं बढ़ना।

• (ग) प्रशासनिक, विपणन एवं श्रम संबंधी लक्षण:

- **वैधानिक बकायों में भारी वृद्धि:** श्रमिकों के मासिक वेतन, भविष्य निधि (PF), ईएसआई तथा जीएसटी व अन्य करों के भुगतान में महीनों का विलंब।
- **कुशल मानव संसाधन का पलायन (High Attrition):** शीर्ष प्रबंधकों, इंजीनियरों और कुशल कामगारों का डूबते जहाज को छोड़कर तेजी से दूसरी कंपनियों में चले जाना।
- **श्रमिक अशांति एवं मनोबल में गिरावट:** कारखाने में आए दिन कार्य बहिष्कार, धीमे काम करो (Go-Slow), हड़तालें तथा अनुशासनहीनता का माहौल बनना।

3. निष्कर्ष: इन लक्षणों की समय पर पहचान (Early Diagnosis) करके ही किसी औद्योगिक उपक्रम को दिवालिया होने से बचाया जा सकता है। आरंभिक स्तर पर ही वित्तीय पुनर्संरचना और प्रबंधकीय सुधार इसका एकमात्र समाधान है।